सिन्दूर की होली

[समस्या-नाटक]

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र

ग्रन्थ-संख्या—३६

प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती-भण्डार
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

तृतीय संस्करण
सं० २००२ वि०
मूल्य १।)

मुद्रक
महादेव एन० जोशी
लीडर प्रेस, इलाहाबाद।

प्राक्कथन

हिन्दी साहित्य के अन्य अंगों की भाँति 'नाटक' का अंग भी अभी तक कमजोर और शिथिल है। हिन्दी नाटको का आरंभ एक प्रकार से बाबू हरिश्चन्द्र के समय में ही हुआ। भारतेन्दु-काल के नाटककारो में लक्ष्मण सिंह, प्रताप नारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, श्रीनिवास दास, बदरी नारायण चौधरी आदि हैं। उन सज्जनों ने देश की धार्मिक, नैतिक और सामाजिक परिस्थितियों पर इतना ध्यान दिया कि जीवन के दूसरे अंगों के सोचने अथवा प्रकाश डालने का उनको अवसर ही न रहा।" उनके नाटको के विषय प्रायः ऐसे थे जिनकी ओर सर्व-साधारण का ध्यान आकर्षित करना अत्यावश्यक था। इसी ध्येय को रख कर उन्होंने ऐसे नाटकों की रचना की जिनके द्वारा हिंदू जनता मे स्वाभिमान, वीरता, धार्मिकता आदि के भाव उत्पन्न हों; अथवा मद्यपान, मांसाहार, पाखंड, छूत, वेश्यानुराग आदि दोषों की ओर से घृणा जाग्रत हो। जो कुछ मौलिक कृतियाँ उस समय से हुईं वे प्रायः उपर्युक्त ध्येय के साधन अथवा केवल मनोरंजन के निमित्त हुईं। इसके अतिरिक्त अनुवादों की भी धूमधाम रही। संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला के नाटकों का अनुवाद किया गया।

भारतेन्दु के समय से आज तक नाटक-रचना उपर्युक्त ढंग से होती रही। अंगरेजी नाटकों की छाया यद्यपि उनके समय में ही पड़ने लगी थी किन्तु धीरे धीरे उनका प्रभाव बहुत बढ़ गया।

यहाँ तक कि शेक्सपियर के नाटकों के आधार पर रचना करना हमारे नाटककारों का आदर्श होगया। इस प्रवृत्ति को पारसी नाटक-कम्पनियों और द्विजेन्द्रलाल राय की कृतियों ने खूब दृढ़ और वेगवती बनाया। हाँ, कुछ लोग संस्कृत शैली का अनुकरण करते रहे और आवश्यकतानुसार उसको काट-छाँट कर उसका प्रचार करते रहे। संस्कृत शैली की संरक्षा करने वालों में स्वयं बाबू हरिश्चन्द्र और आजकल श्री जयशंकर प्रसाद जी प्रमुख हैं। तथापि अंगरेजी शैली को जैसी उन्नति हुई वैसी संस्कृत की नहीं। प्रत्युत उसका ह्रास ही होता रहा।

जिस समय भारतेन्दु के नेतृत्व मे हिन्दी साहित्य मे नाटक बढ़ने लगे थे और हिन्दी संसार मे शेक्सपियर की आराधना हो चली थी उसी समय योरप में शेक्सपियर का युग समाप्त हो रहा था। सन् १८७५ मे इब्सन ने योरप के नाटक साहित्य मे क्रांति मचानी आरम्भ कर दी। बीस वर्ष तक अपने नाटकों द्वारा उसने ऐसा आन्दोलन किया और ऐसा आदर्श प्रस्तुत कर दिया कि जिसके कारण शेक्सपियर का प्रभाव क्षीण हो गया और इस नये युग का आरम्भ हुआ।

इब्सन पुरानी परिपाटी को काल्पनिक, मिथ्या और विचार-शून्य मनोविकारों का कृत्रिम उद्गार समझता था। केवल मनो-विनोद के लिए काल्पनिक रचनाएँ करना जिनका जीवन से वास्तविक सम्बन्ध नाम-मात्र के लिए ही था, उसने व्यर्थ ही नहीं किन्तु हानिकारक समझा। उसने मनोरंजन को बहुत ही गौण और प्राकृतिक जीवन की समस्याओं को प्रधान स्थान दिया। इब्सन की धारणा थी कि मनुष्य का व्यक्तित्व और वैयक्तिक जीवन और आचरण बड़े ही महत्व का विषय है। क्योंकि

वैयक्तिक जीवन की सुंदरता पर समाज और सभ्यता की उन्नति अवलम्बित है। उसकी दूसरी धारणा यह थी कि सब से शोचनीय और संहारक प्रवृत्ति वह है जो प्रेम की अवहेलना और तिरस्कार करने वाली या दबाने वाली हो। उसके बराबर कोई दुःख नहीं, वह तो साक्षात आत्मघात है। व्यक्ति और समाज के पारस्परिक घात और प्रतिघात में इब्सन ने अपनी सारी शक्ति व्यक्ति की रक्षा में लगा दी। उन दोनों के द्वंद्वों का चित्रण उसने बड़ी मार्मिकता, कुशलता और प्रवीणता के साथ किया है। अपने नाटकों द्वारा उसने योरपीय साहित्य और समाज की निद्रा भंग कर दी। नाटक रचना शैली, नाटकों के विषयों और आदर्शों का उसने रुख ही बदल दिया।

इब्सन के विचारों से प्रेरित होकर योरप के अन्य देशों मे भी नये नये नाटककार उठ खड़े हुए। चारों ओर आन्दोलन फैल गया। नाट्यकला की पुरानी पद्धति जिसका आदर्श काल्पनिक चित्रण, बनावट-सजावट, और येनकेन प्रकारेण केवल मनोरजन ही था लोगों को अरुचिकर प्रतीत होने लगी। बनावटी बातचीत, तुकान्त वाक्यों, रचना की कृत्रिमता से लोग ऊब उठे। दिनो दिन यह विचार बढ़ने लगा कि नाटको का लक्ष्य सामाजिक जीवन और समस्याओ का विवेचन ही होना चाहिये। अतएव जीवन की वास्तविक समस्याओं पर प्रकाश डालने और सुलझाने के लिए ही नाटक लिखे जाने लगे। उनमे वास्तविकता, यथार्थता, और सत्यता की प्रधानता बढ़ने लगी।

जिस प्रकार नाटकों का लक्ष्य बदलने लगा उसी प्रकार नाट्यकला में भी परिवर्तन होने लगा। कृत्रिमता, तड़क-भड़क, सज-धज, चटपटीपन, वागाडंबर को छोड़कर लोग स्वाभाविकता,

सरलता और तत्वानुसन्धान की ओर बढने लगे। परिणाम यह हुआ कि नये ढंग की नाट्यशालाएँ और रंगमंच बनने लगे। यह आन्दोलन फ्रांस में ऑत्वान और रूस में स्टेनिस्लाव्सकी ने जोरों के साथ किया।

इसी काल मे ईंगलैंड में बरनर्डशा का उत्थान हुआ। उसने भी नैसर्गिक जीवन और ईश्वरीय आशय का तारतम्य समझाने एवं उनका सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। उसके नाटको में भी सामयिक समस्याओं और सामूहिक अथवा वैयक्तिक प्रश्नों पर सहानुभूति पूर्वक प्रकाश डालने एवं पथ-प्रदर्शन का प्रयत्न पाया जाता है।

उसको भी आदि में अनेक कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं। उसके नाटको का अभिनय करने के लिए साधारण नाटक समितियाँ जो व्यापार की दृष्टि से ही नाटक करती हैं, तैयार न थीं। कुछ नाटको का अभिनय सरकार द्वारा मना कर दिया गया क्योंकि वे कुरुचिपूर्ण समझे गये। उसके एक पुराने मित्र आर्चर ने तो उसे यह भी समझाने का प्रयत्न किया कि उसमें नाटक रचना की शक्ति, क्षमता और योग्यता ही नही अतएव अनधिकार चेष्टा का परित्याग करके उसे और कोई काम उठाना चाहिये। किन्तु वे अपनी टेक पर जमे रहे और धीरे धीरे उनका सिक्का इंगलैंड मे ही नही किन्तु योरप और अमरीका मे भी जम गया। यहाँ तक कि १९२६ मे उन्हे नोबल पुरस्कार भी मिल गया। उनके नाटको का शिक्षित समुदाय में बड़ा आदर होने लगा और उनके अभि-नय करने के लिए समितियाँ और नई नाट्यशालाएँ खुल गईं और नाट्यकला की परिपाटी बदलने लगी।

यद्यपि गत योरपीय महासमर (१९१४—१९) के कारण

जनता की रुचि मे कुछ परिवर्तन और विकार उत्पन्न हो गया किन्तु इस पर भी इब्सन, बरनर्डशा आदि का प्रभाव शिक्षित समुदाय पर वैसा ही जमा रहा।

पाश्चात्य देशों की इस प्रवृत्ति का हमारे साहित्य पर प्रभाव पड़ना अनिवार्य है। योरपीय ढंग की शिक्षा, आवागमन और विचार-विनिमय की सुगमता के कारण साहित्य में आदान-प्रदान और व्यापकता बहुत बढ़ गई है। हिन्दी साहित्य के प्रत्येक अंग पर योरुपीय प्रभाव पड़ रहा है, नाटक और नाट्यकला उससे बची नहीं रह सकती। नवीन शिक्षा और दीक्षा के कारण शिक्षित समुदाय सतर्क, मननशील हो रहा है। बुद्धितत्व का प्राधान्य होता जा रहा है। अतएव उन नाटकों का जिनमें बुद्धितत्व, नैसर्गिकता, स्वतंत्रता आदि गुणों का समावेश है, उत्तरोत्तर ग्राह्य और आदरणीय होना अवश्यम्भावी है। कपोल कल्पना, कृत्रिमता, आडम्बर, पाखंड और खोखले आदर्शवाद से आधुनिक शिक्षित समुदाय के मानसिक, आध्यात्मिक और नैसर्गिक तृष्णा की शांति कदापि नहीं हो सकती चाहे वे कितने ही सुन्दर और मनोरञ्जक क्यों न हो। प्राकृतिक जीवन का मानसिक प्रकाश मे अनुसन्धान करना और जीवन को तदनुसार नियंत्रण करना ही इस युग का ध्येय हो रहा है। रूढ़ियो की जंजीरो को—चाहे वे लोहे की हों या सोने की, चाहे उन पर धर्म, समय, समाज और अतीत सभ्यता की छाप क्यो न पड़ी हो,—तोड़ना और साहित्य एवं समाज की स्वतंत्रता और नैसर्गिकता की नींव पर रचना करना ही आधुनिक शिक्षित प्रयास का लक्ष्य है। प्राकृतिक, नैसर्गिक, स्वतंत्र और अप्रतिवद्ध जीवन की प्राप्ति ही नवीन युग का आदर्श है। यह आदर्श काल्पनिक नही। इसमें प्रकृति की तथ्यता, सत्यता और मानुषिक जीवन की वास्तविक अनुभूति का

अपार कोष सञ्चित है। अतएव इसका भविष्य आशामय और मंगलमय प्रतीत होता है। संभव है कि कुछ लोग इस मत को स्वीकार न करें, उसको भयावह और नाशक समझें। उन्हें इसमे अनियंत्रित स्वतंत्रता का ताण्डवनृत्य दिखाई पड़े। किन्तु संसार-चक्र की गति इसी ओर है। जगन्नियन्ता इसी ओर संसार को ले जा रहा है; बुद्धि उसका समर्थन कर रही है और प्रकृति उसको उत्तेजना दे रही है। भविष्य में इसका क्या परिणाम होगा इसको कौन कह सकता है, किन्तु अभी तो उसका मार्ग प्रशस्त और उज्वल दिखाई दे रहा है।

प्रस्तुत नाटक के रचयिता श्री लक्ष्मीनारायण जी भी इब्सन, बरनर्डशा आदि प्रमुख नाटककारों के विचारों और भावनाओं से प्रेरित होकर हिन्दी नाट्य साहित्य में नवीन धारा का प्रचार करने की चेष्टा कर रहे हैं। अपने पूर्व प्रकाशित नाटक "मुक्ति का रहस्य" की भूमिका मे उन्होंने अपने विचार जोरदार शब्दों में स्पष्ट कर दिये हैं। आप कहते हैं कि "बुद्धिवाद किसी तरह का हो—किसी कोटि का हो—समाज या साहित्य की हानि नहीं कर सकता।" हिंदी के समालोचकों को लक्ष्य करके आप लिखते हैं। "इन दिनो हमारे समालोचक साहित्य या कला के भीतर सबसे पहिले यह खोजने लगते हैं कि इन चीजों में लोक-हित का उपदेश या सदाचार की व्याख्या कहाँ और किस रूप में हुई है" किन्तु "इन बातों से कला का क्या संबन्ध? कलाकार इस तरह का उपदेशक तो नहीं है? वह जो कुछ भी कहना चाहता है—उसके निजी प्रयोग की बातें होती हैं। क्या होना चाहिये; क्या न होना चाहिये? इन बातों का सवाल तो यहाँ नहीं उठता। यहाँ तो जो है, है। . . (कला) अनन्त सहानुभूति है जिसकी एक एक नजर मे कल्याण की दुनिया बसती चलती है।"... ..

"इसलिए ज़िन्दगी की कोई भी संकीर्ण परिपाटी, धर्म या सदाचार की कोई भी निश्चित कसौटी, साहित्य और कला की कोई भी प्रभावशालिनी व्याख्या आँख मूँद कर स्वीकार कर लेना यही नहीं कि व्यक्तिगत विकास मे बाधा डालेगी, एक प्रकार से घातक भी होगी।" तत्वत. ये बातें ठीक है किन्तु इनको व्यावहारिक बनाने मे अनेक उलझनें और कठिनाइयाँ हैं। युवक मिश्र जी भी उनका अनुभव करते हैं जैसा कि उनकी उपर्युक्त भूमिका से प्रतीत होता है। इन समस्याओं का हल करना सरल काम नहीं। अतएव कोई आश्चर्य नहीं कि ये भविष्य के नीहार से आक्रान्त हैं।

मिश्रजी के नाटकों में न तो अनेक पात्र हैं, न गाने या कविता पाठ की सामग्री और न अनावश्यक दृश्यों का परिवर्तन। उनके नाटकों का पट-विस्तार भी इतना नहीं कि उसमें विभिन्न देश, काल, व्यवस्थाओं और घटनाओं की विभ्रममयी भरती हो। आधुनिक योरपीय शैली के अनुकूल उनमे गिने-चुने आवश्यक पात्र हैं और व्यापार भी सुसंगत और सुनियंत्रित है। आपके कुछ शुरू के नाटकों में कहीं कुछ अनावश्यक बातो के विस्तार का दोष आ गया था किन्तु वह अब धीरे धीरे जा चुका है।

उपर्युक्त विशेषताएँ प्रस्तुत नाटक "सिन्दूर की होली" में भी हैं। इसमें रंग-मंच की रचना और उसके संचालन के सम्बन्ध में भी सुगमता की ओर पहले से अधिक ध्यान दिया गया है। नाटक का समय थोड़ा है। घटनास्थल भी एक ही है केवल थोड़ा-सा ही हेर-फेर है। इसके पात्र भी पाँच या छ. हैं। प्रत्येक पात्र का अपना-अपना व्यक्तित्व है। प्रत्येक का विकास अपने अपने ढंग का है। प्रत्येक की भावना और उसके व्यक्तित्व का

चित्रण सहानुभूतिपूर्वक किया गया है। यहाँ तक कि मुरारीलाल का भी चित्रण सहानुभूति शून्य नहीं। मनोरमा और चन्द्रकला दोनो शिक्षित स्त्रियाँ है। उनमे कोमलता, सहिष्णुता और उच्चादर्श का अद्भुत संमिश्रण है। दोनो मे अनुराग और त्याग का चमत्कार है। चन्द्रकला ने प्रेम का जो आदर्श रखा वह पौराणिक चित्रों से कम नहीं। मनोरमा ने दूसरा आदर्श खड़ा करने का प्रयत्न किया किन्तु मनोजशंकर ऐसी विक्षिप्त दशा मे था कि वह उससे सहयोग न कर सका। दोनों चित्रो का सूक्ष्म भेद नाटक-रचयिता ने चन्द्रकला के द्वारा कहलवा दिया—"तुम्हारी मजबूरी पहले सामाजिक फिर मानसिक हुई, मेरी मजबूरी प्रारम्भ से ही मानसिक हो गई।" दूसरे अंक मे मनोरमा और मनोजशंकर का और तीसरे अंक में चन्द्रकला और मनोरमा का वर्तालाप ओज और विचारपूर्ण है।

मिश्रजी का प्रयत्न सर्वथा सराहनीय है। उनका यह प्रस्तुत नाटक कलागत प्रौढ़ता और विवेक का द्योतक है। सम्भव है विशेष छान-बीन करने पर किंचित दोष भी देख पड़े लेकिन इसके लिए तो—"एकोहि दोषो गुण सन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणे-ष्विवांक:" और इसलिए उनकी रचनाएँ आदरणीय हैं। नाटक साहित्य में वह युग प्रवर्तन करना चाहते है। एतदर्थ हम उनका स्वागत करते हैं और आशा करते है कि हिन्दी संसार भी उनकी कृतियों का आदर करेगा, उनके उत्साह को बढ़ाकर उनको अपने आदर्श की प्राप्ति में और हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि मे सहायता देगा।

२० अप्रैल १९३४
प्रयाग विश्वविद्यालय

रामप्रसाद त्रिपाठी
(डी० एस-सी०)

सिन्दूर की होली

पात्र

रजनीकान्त, मनोजशंकर, मुरारीलाल, माहिरअली, भगवन्त सिंह, हरनन्दन, चन्द्रकला, मनोरमा, डाक्टर और कुछ और जन

सिन्दूर की होली

[बरसात का दिन। प्राय एक पहर दिन चढ चुका है लेकिन आकाश में घने बादल होने के कारण मालूम हो रहा है कि अभी सबेरा हो रहा है।

डिप्टी कलक्टर मुरारीलाल का बँगला। बँगले मे सामने की ओर एक बड़ा कमरा है जिसमें अगरेजी ढंग के एक दूसरे से लगे हुये सामने की ओर चार दरवाजे हैं। दरवाजे सभी खुले हुये हैं और कमरे के बीच में एक बड़ी मेज के चारों ओर लकड़ी की कुर्सियाँ रक्खी हैं। मेज पर एक अगरेजी अखबार, एक तश्तरी में पान, इलायची और उसके पास ही गोल्ड फ्लेक सिगरेट का डिब्बा और दियासलाई पडी है। दूसरी ओर की दीवाल मे दो आलमारियाँ हैं जिनमें मोटी मोटी पुरानी किताबें रक्खी हैं, किसी की जिल्द उखड गई है तो किसी जिल्द का कपड़ा सड गया है और गन्दी दफ़्ती देख पड़ती है। कमरे के सामने मेहराबदार गोसवारा है जिसके खम्भों का सीमेन्ट कहीं कहीं उखड़ गया है और भद्दी ईटें देख पड़ती हैं। गोसवारे में दीवाल के किनारे बाँस की दो कुर्सियाँ रक्खी हैं। गोसवारे के दोनो ओर दो गोल कमरे हैं जिनके एक एक दरवाजे गोसवारे में हैं और एक एक पीछे की ओर बड़े कमरे मे। बड़े कमरे में बँगले के भीतरी भाग मे जाने का रास्ता है। मुरारीलाल का मुन्शी माहिरअली बाहर की ओर से कमरे मे प्रवेश करता है। माहिरअली मेज पर की चीजें इधर उधर करता है। अपने अँगोछे से कुर्सियों को इधर उधर हटाकर झाड़ता है और फिर उन्हें ठीक जगह पर लगा रहा है।]

[भीतर से मुरारीलाल का प्रवेश]

मुरारीलाल— **कहाँ चले गये थे जी? साढ़े नौ हो रहा है।**

आज मुकदमे अधिक है। घण्टे भर के बाद मुझे चला जाना पड़ेगा और तुम्हारा पता नहीं।

[आगे बढ कर कुर्सी पर बैठता है और सिगरेट जला कर पीने लगता है]

माहिरअली—आये थे उनके भतीजे...

मुरारीलाल—किसके भतीजे ?

माहिरअली—राय साहब भगवन्तसिंह के भतीजे जो यहाँ वकील हैं ? वही जो बातें हुई थीं परसों...

मुरारीलाल—[उत्साह से] अच्छा। [सिर पर हाथ रखकर] आज-कल बात याद नही रहतीं। हाँ तो क्या तै रहा ? मनोज के विलायत जाने का खर्च इनसे वसूल कर लो...इसी मे तुम्हारी चालाकी है।

माहिरअली—तो वह तैयार भी हैं लेकिन एक बात .

मुरारीलाल—बात क्या ?

माहिरअली—पट्टीदारी का झगड़ा है। उस दिन जो लड़का आप से मिलने आया था, जिसकी उम्र सत्रह अठारह साल के करीब थी, उसके बाप को मरे अभी साल भर हो रहा है। अब उसे कमजोर और गरीब समझ कर राय साहब उसका हक भी हड़प लेना चाहते है। बेचारा उस दिन रोने लगा था। एक ही खानदान और एक ही खून

मुरारीलाल—अच्छा तो इसमे तुम क्या कर सकते हो ? मै खूब जानता हूँ भगवन्त बड़ा जालिम है। लाखो रुपया रैयत को

लूट कर जमा कर लिये है। अभी तक आनरेरी मजिस्ट्रेट था ..इस साल राय साहब भी हो गया है। उधर का सारा इलाका उसके रोब मे है। जो चाहेगा कर लेगा तो फिर मैं क्यों न कुछ [उसकी ओर देखने लगता है]

माहिरअली—वह तो राजी है देने को। दस हजार लेकर तो वह अभी आ रहा है लेकिन उस लड़के की जान जायेगी। हुजूर को खुश कर लेने के बाद वह उसकी जान ले लेगा। पुलिस उसकी राय की है ही .इधर आप की ओर से भी वह बेखौफ हो जायगा देहात के लोग उसके दबाव में रहेंगे ही .. इसलिये

मुरारीलाल—हाँ। क्या इसलिये ?

माहिरअली—हुजूर मुझे तो उस बदकिस्मत लड़के पर रहम हो रहा है।

मुरारीलाल—लेकिन इसमें हो ही क्या सकता है ?

माहिरअली—उससे तो हुजूर जो कुछ कहेंगे मान जायेगा ही। राय साहब को भी दबा कर सुलह करा दीजिये।

मुरारीलाल—[कुछ विरक्त होकर] अच्छा देखा जायगा। मनोज को रुपया तो मिल गया होगा अब तक ?

माहिरअली—मिल गया होगा या आज मिल जायेगा।

मुरारीलाल—देखना कहीं उसे मालूम न हो जाय ?

माहिरअली—किसे सरकार .

मुरारीलाल—मनोजशंकर को वह बात केवल तुम्हीं जानते हो ?

माहिरअली—लेकिन आप यह बार बार क्यो कहा करते हैं ? उसमें भी तो मैं ही .

मुरारीलाल—मुझे उस बात का बड़ा दुःख है। मनोज अगर जान जायेगा कि उसके पिता ने मेरी ही वजह से आत्महत्या की थी . [चुप होकर जैसे किसी गहरी चिन्ता में पड़ जाता है] दस वर्ष का समय निकल गया अभी तक तो बात छिपी हुई है। लेकिन अगर किसी दिन खुल गई तो मेरे मुँह पर स्याही पुत जायेगी और फिर मैं किसी काम का नहीं रहूँगा। [कुर्सी पर झुककर गहरी साँस खींचने लगता है।]

माहिरअली—[कुछ रूखे स्वर में] हुजूर अगर मुझ पर शुबहा करते हों तो मुझे जवाब दे दें।

मुरारीलाल—[एकाएक कुर्सी से उठकर माहिरअली का हाथ पकड़ते हुए] मैं तुम पर शुबहा करूँगा ? तबियत बेचैन हो जाती है तो कभी कभी ऐसी बातें निकल जाती हैं। तुमको और मनोजशंकर को प्रसन्न रखने में अगर मेरा सब कुछ बिगड़ जाय तब भी मुझे चिन्ता नही। हाँ, ज़रा भीतर जाकर चन्द्रकला से पूछो तो सबेरे की डाक मे कोई ज़रूरी पत्र तो नहीं है ?

[माहिरअली का प्रस्थान। मुरारीलाल कमरे में बेचैन होकर इधर उधर टहलने लगते हैं। मुरारीलाल की अवस्था इस समय प्राय चालीस वर्ष की है। गोरा और स्वस्थ शरीर, आँखें छोटी लेकिन चमकती हुई

और घने काले वाल जो पीछे की ओर घूम पड़े हैं। दाढ़ी मूँछ बनी हुई। कमीज, चौड़ी मुहरी का पाजामा और पजाबी जूता पहने हैं। इस वेष में मुरारीलाल पूर्ण युवा मालूम हो रहे हैं।

चन्द्रकला के साथ माहिरअली का प्रवेश। चन्द्रकला मुरारीलाल की लड़की है। यों तो चन्द्रकला की अवस्था बीस वर्ष की हो चुकी है लेकिन उसकी आकृति से लड़कपन की सरलता झलकती है जो उसकी सुन्दरता और भी लुभावनी बना रही है। वह हल्के हरे रंग की रेशमी साड़ी पहने है, जिसके आँचर और किनारों पर जरी का काम बना है।]

मुरारीलाल—[माहिरअली की ओर देखकर] बाहर जाओ शायद आ रहे हों

[माहिरअली का प्रस्थान]

[चन्द्रकला की ओर ध्यान से देखते हुए] तुम्हारा चेहरा उतरा हुआ है। तबीअत ठीक है न ?

चन्द्रकला—[मुस्कराने का प्रयत्न करती हुई] नहीं तो .

मुरारीलाल—[कुर्सी पर बैठते हुये] नहीं क्यों ? तुम उदास हो रही हो। कोई पत्र ..? [एकटक उसकी ओर देखने लगता है]

चन्द्रकला—[कुछ सहमकर] लखनऊ से . उनकी बीमारी फिर उभड़ गई थी। किसी दिन दो घण्टे से अधिक बेहोशी में रहे। [धरती की ओर देखने लगती है]

मुरारीलाल—मनोज स्वयं अपनी बीमारी बढ़ा रहा है। यह अवस्था ही ऐसी होती है। पिछली बार गया था . नियम से न तो भोजन करता है और न नियम से सोता है। रात को लड़के होस्टल में सोते रहते हैं और वह कमरा बन्द कर पार्क में जाकर

बाँसुरी बजाता है। इस तरह स्वास्थ्य तो बिगड़ेगा ही। [सोचने की मुद्रा में] उसका भाग्य तो मैं बदल नहीं सकता। अपनी ओर से तो मैंने दूसरे के लिये कोई कहाँ तक अपनी जान न मालूम इस झंझट से कब छुट्टी मिलेगी।

[चन्द्रकला सन्देह और उद्वेग से उनकी ओर देखती है]

चन्द्रकला—लेकिन यह झंझट भी तो आपने स्वयं. नहीं तो उनसे आपका कोई सम्बन्ध नहीं।

मुरारीलाल—कैसी बात कर रही हो? मैं क्या करता हूँ इसकी आलोचना तुमको नहीं करनी चाहिये।

चन्द्रकला—मैंने कुछ कहा तो नहीं . कि...

मुरारीलाल—[हाथ हिलाकर] चुप रहो। कहा क्यों नहीं? मेरा उससे कोई सम्बन्ध नहीं है यह तुम्हें कैसे मालूम? मेरे मित्र का लड़का है। मरने के समय उसने उसे मेरी गोद में डाल दिया था। इसीलिये मैं उसके लिये इतना चिन्तित रहता हूँ। जब तक वह स्वयं अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो जायगा मेरा कर्तव्य उसके साथ यही रहेगा।

चन्द्रकला—अच्छा तो आप मुझे क्षमा करें...

मुरारीलाल—यह क्षमा तुम नहीं माँग रही हो। तुमको जो मैंने बी० ए० तक अंग्रेज़ी पढ़ा दी, तुम्हारी वही पढ़ाई क्षमा माँग रही है। जाओ भीतर ..आजकल की शिक्षा में शब्दों का खिलवाड़ खूब सिखलाया जाता है।

[चन्द्रकला का प्रस्थान । मुरारीलाल तश्तरी से पान निकाल कर मुँह में डालते हैं । माहिरअली का प्रवेश]

माहिरअली—आगये । एक आदमी और साथ में है ।

मुरारीलाल—[जल्दी से उठकर] मैं भीतर जा रहा हूँ । रुपया लेकर भीतर चले आओ । उन लोगों को यहाँ बैठा कर । फिर मैं थोड़ी देर में यहाँ आ जाऊँगा ।

माहिरअली—लेकिन मैं...

मुरारीलाल—[भीतरी दरवाजे से] कोई बात नहीं मैं तो फिर आ ही जाऊँगा । [प्रस्थान]

[माहिरअली गोसवारे में जाकर खड़ा होता है । भगवन्त सिंह और हरनन्दन सिंह का प्रवेश]

भगवन्त सिंह—[माहिरअली का हाथ पकड़कर] साहब कहाँ है ?

माहिरअली—[रूखे स्वर में] भीतर हैं चलिये बैठिये [कमरे के भीतर हाथ उठाकर संकेत करता है]

भगवन्त सिंह—[कातर होकर] आप नाखुश क्यों हो रहे हैं ? मैं आपको भी खुश कर तब यहाँ से जाऊँगा । [उसका हाथ पकड़ कर] चलिए आप भी भीतर .

[माहिरअली भगवन्त सिंह और हरनन्दन सिंह के साथ कमरे में प्रवेश कर मेज के पास जाकर खड़ा हो जाता है]

माहिरअली—बैठिये आप लोग

भगवन्त सिंह—बैठिये आप पहले [हरनन्दन की ओर देखते हुए] हाँ, आप भी बैठिये ।

माहिरअली—आप बैठते क्यों नहीं साहब ? [कड़े शब्दों में] यहाँ का इन्तजाम हो जायगा। आप चुपचाप बैठिये।

[भगवन्त और हरनंदन सहमकर बैठते हैं] हाँ कहिये लाये हैं ?

भगवन्त सिंह—[हरनंदन की ओर संकेत कर] हाँ लाया गया है। साहब को [माहिर की ओर देखता है]

माहिरअली—साहब लोग अपने हाथ से नहीं लेते [हाथ हिला कर धरती की ओर संकेत करते हुए और उसी क्षण ऊपर हाथ उठा कर] यहाँ और वहाँ जवाब देने को भी तो कुछ चाहिये। जिस दिन हिसाब होगा उस दिन। उसी दिन के लिए अपने हाथ से नहीं लेते। उँह निकालते क्यों नहीं ? रखिये यहाँ इस मेज पर।

\ [भगवत सिंह कुछ सहम कर हरनंदन को संकेत करता है। हरनंदन कुर्सी से कुछ ऊपर उठते हुए कुरते के नीचे दोनों हाथ ले जाकर जैसे कोई गाँठ खोलता है और एक रूमाल जिसके बीच में नोट बँधे हैं मेज पर रखता है। भगवंत सिंह रूमाल की गाँठ खोल कर मेज पर रखता है]

भगवन्त सिंह—[माहिरअली की ओर संकुचित दृष्टि से देखते हुए] गिन लीजिये न .

माहिरअली—[भगवंत की ओर तीव्र दृष्टि से देखते हुए] कहिये भी कितना है ? यहाँ चढ़ आने पर आप झूठ नहीं कह सकते। झूठ का रोजगार तो आप लोग देहातों में करते हैं। लगान वसूल करने के वक्त और बिरादरी में ..

भगवन्त सिंह—साढ़े दस हजार ..

माहिरअली—अच्छा तो पाँच सौ और।

हरनन्दन—[मुस्कराते हुए] पाँच सौ आपके लिए है।

माहिरअली—मेरे लिये ? पाँच सौ ?

हरनन्दन सिंह—जी हाँ आप के लिये। [भगवन्त की ओर संकेत कर] आपने बाबू साहब को समझा क्या है ? इस कलेजे का आदमी इस जिले में नहीं। हाँ साहब ! अभी आपका कभी साबका नहीं पड़ा नहीं तो आप बाबू साहब को समझ गये होते। इस जिले मे कोई ऐसा अफसर नही है जो इनकी तबीयत न जानता हो। लाखो रुपया इन्होंने हाकिमों के लिए खर्च कर दिया।

[माहिरअली की ओर देखकर मुस्कराने लगता है]

माहिरअली—[कुछ सोचकर] अच्छा वह अलग कर दीजिये।

[हरनंदन पाँच नोट निकाल कर अलग करता है]

भगवन्त सिंह—सौ सौ के सौ। [हरनन्दन की ओर देखता है]

हरनन्दन सिंह—जी हाँ [माहिरअली की ओर देखकर] हाँ, ले जाइये।

[माहिरअली अनिच्छापूर्वक पाँच नोट उठाकर अपनी जेब में रख लेता है और शेष नोट दोनों हाथों में पकड़ कर जल्दी से भीतर निकल जाता है। ऐसा मालूम हो रहा है जैसे हाथ में आग लेकर भागा जा रहा हो।]

हरनन्दन सिंह—साहब से इसकी शिकायत करनी चाहिये। मालूम होता है कहीं का नवाब है।

भगवन्त सिंह—[कुछ सोचकर] क्या कहा जायगा ?

हरनन्दन सिंह—किससे ?

भगवन्त सिंह—साहब से और किससे ?

हरनन्दन सिंह—आप चुपचाप बैठे रहियेगा मैं सब कह लूँगा। साल भर में इतनी तनखाह नहीं मिलती। अब क्या ?

भगवन्त सिंह—तुम्हारा ही तो भरोसा है नहीं तो अब तक तो वह लौंडा मेरी इज्जत बिगाड़ दिए होता। हाँ यह तो कहा जायगा न कि [उसकी ओर ध्यान से देखकर] तुम उसके चचा हो. उसके बाप के मामा के लड़के हो और तुमको भी उसकी चाल-चलन पसन्द नहीं। क्यों ठीक होगा न ?

हरनन्दनसिंह—मेरे दो लड़के हैं.. एक भी काम न आये अगर आप के बारे में मेरे मन में कुछ भी कपट हो। रिश्तेदारी की परवाह मुझे नहीं है। बने थे जब भाई साहब जीते थे तब मुझे क्या दे दिया तब अब बिगड़ जाने पर जब अपने ही लिए कोई ठिकाना नहीं है मुझे क्या दे देंगे ?

भगवन्त सिंह—[मुस्कराकर] क्यों तुम्हारा मकान उन्हीं की लकड़ी से बना था। [फिर मुस्कराता है]

हरनन्दन सिंह—आप भी . दो पेड़ शीशम की इतनी बात... उतनी लकड़ी तो आपने थाने के सिपाहियों को दे दिया।

भगवन्त सिंह—दस्तावेज मैं फेर दूँगा। मैं समझूँगा तुम मेरे सगे नातेदार हो। नातेदारी छूटना नहीं मालूम होगा ..नहीं उस घर में इस घर में सही। कोठी का कितना देना होगा ?

हरनन्दन सिंह—आप से लेकर वही एक हजार दिया। [कुछ

सोच कर] एक हजार होगा और सूद जो कुछ सौ डेढ़ सौ और हो।

भगवन्तसिंह—इस बार चल कर डेढ़ हजार और ले लो .. बँगले मे सीमिट और किवाड़ भी लगवा लो। हो जायगा सब इतने में..

हरनन्दनसिंह—अच्छी तरह से। सब कुछ हो जायेगा इतने में। कोठी का हिसाब भी साफ़ हो जायेगा और बँगले का काम भी खतम हो जायेगा।

भगवन्तसिंह—तुम्हारे यहाँ आता तो कुछ खिला दिया जाता। झगड़ा साफ हो जाता।

हरनन्दन सिंह—हाँ हो सकता था। लेकिन आप नही जानते वह अठारह बरस का लड़का चालाकी में आप से कम नहीं है। इस बार तिलक में दुनिया को दिखाने के लिए कि मैं उसके शत्रु के साथ हूँ . उस पर भी वह सम्बन्ध नहीं तोड़ता मेरे लड़के के तिलक मे आता है। वहाँ गया पहर भर रात बीत जाने के बाद...जब तिलक की तैयारी हो रही थी . मैं तो यह समझे था कि नहीं आयेगा। वहाँ गया लेकिन जल तक नही लिया तिलक चढ़ने के समय इस तरह आँगन मे गया जैसे खुद घर का मालिक हो। [मुस्करा कर] मैं जा कर देखता हूँ आँगन में बिछावन लगवा रहा है, आदमियो को जल्दी करने के लिए डाँट फटकार रहा है औरतों को इधर उधर कर गोसवारे में पर्दे लगा रहा है। उसका काम तो होता है भूत की तरह न ? बात की बात में

सारा काम उसने ठीक कर दिया। रमानाथ को सब कपड़े अपने हाथ से पहनाया। आप के यहाँ आदमी जाकर लौट आया था टोपी कहीं चली गई थी। मैं इस चिन्ता में था कि काम कैसे चलेगा. उसे मालूम हुआ कि टोपी नहीं मिली है.. अपना कामदार साफा उसके सिर में बाँध दिया, चादर और अपनी अँगूठी भी उसे दे दी।

[चुप होकर भगवन्तसिंह की ओर देखने लगता है]

भगवन्तसिंह—तो यदि वह नहीं गया होता तो तुम्हारी इज्जत ..

हरनन्दनसिंह—ख़ैर, इज्जत बिगड़ती या न बिगड़ती . लेकिन उतनी शोभा तो नहीं होती। मेरे मन में तो आया था कि चल कर आप का पैर पकड़ लूँ और कहूँ कि उससे सुलह कर लीजिये।

भगवन्त सिंह—हूँ तो अभी भतीजे का मोह बना हुआ है। मैं उससे सुलह करूँगा? यही कहने के लिए कि मजबूर हो कर उन्हें सुलह करनी पड़ी। मैं रगड़ कर मार डालूँगा। उसके बाप से पन्द्रह वर्ष बड़ा हूँ, इस लड़के के साथ मैं सुलह करूँगा? मेरा कोई लड़का हुआ होता तो उसकी उम्र का मेरा पोता होता। पट्टीदार और दाल तो गलाने की चीजें होती हैं। दाल गल जाने पर मीठी होती है और पट्टीदार गल जाने पर क़ाबू में रहता है। अपनी जिन्दगी मे दो लाख रुपये की जमीन मोल ली मैंने और एक लाख रुपये नकद जमा किया, उसकी मजाल कि वह मेरा जवाब दे?

हरनन्दन सिंह—लड़कपन है। साल भर भी नहीं हुआ घर का

मालिक मरा है। सोचता है कि हर गाँव मे आप के खेवट में हिस्सेदार है परते पर हली-हुकूमत उसे भी मिलनी चाहिये।

भगवन्त सिंह—यह दस हजार आज इसीलिए दिया है कि आने दो आने के पट्टीदारों को भी हली-हुकूमत मिले ? जङ्गल में दो शेर नही रहते। कहाँर मेरे यहाँ काम करते हैं इसलिए उसके यहाँ भी करे ? दो दर्जा अंग्रेजी पढ़ ली अब कूयें से पानी निकालने में लाज लगती है। शादी-गमी में कहाँर काम करते हैं मैं नहीं मना करता। अब वह भी बद कर दूँगा। बटवारा कराले। तुम तो उसके चचा हो [भौंह टेढी कर सिर हिलाते हुए] उसके बाप के ममेरे भाई हो, तुम्हारे यहाँ शुभ के अवसर पर गया, तुम्हारे लड़के का चढ़ावा था। तुम्हारे यहाँ उसने जल नहीं पिया। दस-बीस दूसरे आदमी तुम्हारे यहाँ भोजन कर गये और वह सगा नातेदार हो कर उपवास कर चला गया। नातेदारी का मोह रखना हो तो उसी से लेकर मेरा रुपया लौटा दो लेकिन वहाँ तो नमक तेल का भी ठिकाना नहीं है और नहीं तो चुपचाप मुझसे लेकर औरो का दे डालो और जिस तरह से कहता हूँ

हरनन्दनसिह—[सहम कर] मैं तो सब तरह तैयार हूँ मेरे यहाँ वह आयेगा नहीं नहीं तो भोजन मे [एकाएक चुप हो जाता है]

भगवन्तसिंह—[हरनन्दन सिंह के कन्धे पर हाथ रखकर धीमे स्वर में] कुछ नहीं जिस दिन तुम उसे संखिया दे दो ..उसी दिन, हाँ, जी उसी दिन, तुम्हारे दरवाजे पर हाथी बँधवा दूँगा। दुनिया मे सब कोई अपना अपना देखता है।

[हरनन्दन का चेहरा पीला पड़ जाता है। मुरालीलाल का प्रवेश। भगवन्त सिंह और हरनन्दन कुर्सी छोड़ कर उठते हैं।]

मुरारीलाल—[आगे बढ़ते हुए हाथ उठाकर] बैठे रहिये ! बैठे रहिये [उन दोनों से बारी बारी तनिक तनिक सा हाथ मिला कर कुर्सी पर बैठते हैं] राय साहब ! बैठिये आप ? [हरनन्दन की ओर संकेत कर] आप का परिचय ?

भगवन्तसिंह—आप मेरे मामू के लड़के हैं।

मुरारीलाल—[कुर्सी से उठते हुए] आप लोग बैठ जायँ। [दोनों कुर्सियों पर बैठते हैं] आप के सगे मामू के लड़के [हरनन्दन की ओर देखता है]

भगवन्तसिंह—जी हुजूर एक तरह से बिलकुल सगे . मेरे एक चचेरे भाई के जो केवल चार पीड़ी का अलग . मेरे दादा और उसके दादा सगे भाई थे। मैं उसे अपने भाई की तरह मानता था और उसने भी कभी मुझे उत्तर नहीं दिया। [गहरी साँस खींच कर] दुर्भाग्य से पिछले साल वह एकाएक बीमार पड़ कर मर गया अवस्था में भी मुझसे पन्द्रह साल छोटा था ' उसका मरना तो मेरे लिए [चुप होकर बड़े दुख से उनकी ओर देखने लगता है]

मुरालीलाल—परिवार का योग्य व्यक्ति मरता है तो दुःख होता ही है लेकिन कोई करे तो क्या करे ? ससार मे कोई भी पूरे तौर पर सुखी तो रहने नहीं पाता। यही संसार की लीला है। अब उनके घर का काम कैसे चलता है ?

भगवन्तसिंह—[विरक्ति के स्वर में] एक लड़का है सत्तरह अठारह वर्ष का

मुरारीलाल—अभी तो वह पढ़ता होगा ?

भगवन्तसिंह—जी नहीं . आपने उसे देखा होगा अदालत में उसी ने मुझे परेशान कर दिया है। बराबर ठाटबाट के साथ रहता है घर मे खाने का भी ठिकाना नहीं है। अंग्रेजी फिसन बनाकर घूमता है . एक नम्बर का आवारा हो गया है।

मुरारीलाल—हाँ साहब। रहता तो है बड़े ठाट से और उसकी शिकायत भी मैं सुन चुका हूँ। अभी [कुछ सोच कर] कई दिन हुये वहाँ के थानेदार कह रहे थे दौरे मे कानूनगो ने भी कहा था। [हरनन्दन की ओर देखकर] आप उसे समझा क्यों नहीं देते आप तो उसके सम्बन्धी हैं ?

भगवन्तसिंह—पूछ लें हुजूर इन्हीं से। यह तो उसके विरुद्ध नहीं कहेंगे ? मैं तो खैर इन दिनों उसका शत्रु हूँ। उसके बाप से मुझसे . सब लोग जानते है कैसी निभी कभी किसी तरह की शिकायत हाकिमों तक नहीं पहुँची !

मुरारीलाल—[मुस्कराकर] लेकिन हाँ उसके बाप का नाम रमापति न था ?

हरनन्दनसिंह—जी

मुरारीलाल—लेकिन उनसे भी तो आप से नहीं पटी ? वह मुसम्मात वाला मामला जिसके वारिस वह थे, उनके और आप

के बीच में हाईकोर्ट तक लड़ता गया। जिसमें वे मुसम्मात के वारिस करार दिये गये।

भगवन्तसिंह—[सहम कर] जी हाँ वह तो हक का मामला था।

मुरारीलाल—[मुस्कराकर] आपको पहले नहीं मालूम था कि वारिस है कौन ? आप या वे। क्यों ? आप लोग तो प्रतिष्ठित वंश के हैं। आप लोगों को तो आपस में ही समझ लेना चाहिये।

भगवन्तसिंह—[सहम कर] जी हाँ.

मुरारीलाल—[हरनन्दन से] क्यों नहीं आप उस लड़के को समझा देते ?

हरनन्दनसिंह—[असमञ्जस के साथ] हुजूर मैंने कोशिश तो की। लेकिन वह लड़का मानता नहीं। मैं तो इधर साल भर से उसके घर भी नहीं गया। मेरा विश्वास नहीं करता।

मुरारीलाल—[भगवन्तसिंह से] वह चाहता क्या है ?

भगवन्तसिंह—[कुछ सोचते हुये] वह . वह हुजूर ? गाँजा पीता है आवारा हो गया है।

मुरारीलाल—बस ? उसने आपका क्या बिगाड़ा ? बड़े घरानों में ऐसे लड़के भी पैदा हो जाते हैं। लेकिन किसी तरह निबाहना ही पड़ता है। उसकी बुराई तो आपको छिपानी चाहिये। इसमे आपकी भी बुराई है।

हरनन्दनसिंह—हुजूर लगानवन्दी कर रहा है। बाजारों में कपड़े की होली जलाता है।

मुरारीलाल—इसकी फिक्र सरकार खुद कर लेगी।

भगवन्तसिंह—[घबराकर] सरकार मैं तो उजड़ रहा हूँ।

मुरारीलाल—[मुस्कराकर] लेकिन मैं नहीं समझता उसके गाँजा पीने से या लगानबन्दी से आप क्यों उजड़ रहे हैं ?

भगवन्तसिंह—इस साल मेरी लगान नही वसूल हो सकती।

मुरारीलाल—और जमीन्दारान तो हैं ? अपनी वसूली भी उसने छोड़ दी है ?

भगवन्तसिंह—सरकार [रुककर] सिर्फ मेरी लगान बन्द कर रहा है।

मुरारीलाल—[कुछ सोचते हुये हरनन्दन को सकेत कर] आप कृपाकर बाहर तो जाइये। मैं [भगवन्तसिंह की ओर संकेत कर] आपसे बात कर लूँ।

[हरनन्दन का प्रस्थान] राय साहब !

भगवन्तसिंह—जी

मुरारीलाल—लड़का है और आप बुड्ढे हुए

भगवन्तसिंह—जी

मुरारीलाल—आप खुद विचार कर लीजिये।

भगवन्तसिंह—[भर्राई हुई आवाज में] मेरी इज्जत बिगड़ गई सरकार ! हली-हुकूमत सब बन्द है। अब या तो वह नहीं या मैं नहीं

मुरारीलाल—[चौंककर] आप खून करना चाहते हैं ?

भगवन्तसिंह—मैं चाहता हूँ उसका हाथ पैर टूट जाये। उसे याद रहे .

मुरारीलाल—आप कहिये मैं उसे समझा दूँ। डरा दूँ, धमका दूँ। डर जायेगा आपके रास्ते मे रोड़ा नहीं अटकायेगा।

भगवन्तसिंह—हुजूर! [घबड़ाकर उनकी ओर देखने लगता है]

मुरारीलाल—परेशान न होइये। मुझे इतना मौका दीजिये मैं उसे समझा सकूँ।

भगवन्तसिंह—[काँपती हुई आवाज में] लेकिन हुजूर [घबड़ा कर उनकी ओर देखता है फिर धरती की ओर देखने लगता है।]

मुरारीलाल—[चौंककर] क्या हो गया आप को ?

भगवन्तसिंह—[हाँफते हुये] अब क्या हो सकता है हुजूर ? [कातर दृष्टि से उनकी ओर देखता है]

मुरारीलाल—[तीव्र दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए] अरे! काँप क्यों रहे हो जी ? तुम्हारे तरह का व्यक्ति तो मेरे देखने मे नहीं आया। नाहक उस लड़के की जान लेना क्यो चाहते हो ? तुम्हारे वंश में पैदा हुआ है। अभी उसके बाप को मरे साल भर हो रहा है...तुम्हारी तबियत तो शैतान की . तुम समझौता करने को भी तैयार नही।

भगवन्तसिंह—हाय राम! [उठ कर उनके पैर पर गिरते हुए] अब क्या होगा सरकार ? अब तक तो जो होने को था हो चुका होगा ?

मुरारीलाल—[चौंककर उठते हुए] क्या हो गया होगा ?

भगवन्तसिंह—अब तक तो वह मारा गया होगा ..हुजूर .

मुरारीलाल—मारा गया होगा ? कैसे मारा गया होगा क्यों ?

भगवन्तसिंह—उस दिन हुजूर ने कहा था।

मुरारीलाल—मैंने कहा था ? क्या कहता है बेईमान ? मैंने कहा था कि पट्टीदारी के मामले में अपने भतीजे को मार डाल ? खून करने को मैंने कहा था ?

भगवन्तसिंह—[जोर से साँस लेकर] अब तो हो गया सरकार। अब क्या होगा ? जो कुछ कहा जाय मैं हाजिर हूँ।

मुरारीलाल—क्या हाजिर हो ?

भगवन्तसिंह—जितना आज दिया है उतना और .

मुरारीलाल—[कुछ सोचकर] लेकिन . अच्छा उतना ही नहीं उससे चारगुना . चारगुना इससे कम नहीं।

भगवन्तसिंह—उतना तैयार नहीं है [उनकी ओर देखता है फिर एकाएक धरती पर बैठ कर उनके पैर पकड़ लेता है]

मुरारीलाल—[उसे पैर से ठेलकर] उससे कम नहीं। धरती फोड़कर, आकाश छेदकर जहाँ से हो सके उससे कम नहीं। [कुछ सोचकर] बस चले जाओ। देखो यह होने न पाये। उस लड़के को चोट न लगे। सावधान बस .बस हो नहीं सकता मैंने उसी दिन उसे अदालत में देखा था . अगर वह मेरा लड़का हुआ होता उसका वह सुन्दर स्वस्थ मुख, उसकी वह रतनार आँखें . एक बार किसी दिन यहाँ भी आया था हाँ याद आ रहा है। नहीं, उठो [भगवतसिंह उठता है] चले जाओ . निकल जाओ। उसे चोट न आए . खड़े क्यों हो ? जाते क्यों नहीं ?

[भगवंत सिंह वहीं खड़ा होकर धरती की ओर देखता है। मुरारीलाल का मुख क्रोध और आशंका से लाल हो उठता है] पत्थर की तरह क्यों खड़ा है ?

भगवन्तसिंह—[टूटते हुए स्वर में] मैं आदमियों को कह आया था अब तक तो वह मारा गया होगा।

मुरारीलाल—[दुःख से] ओह ! यह दूसरी मृत्यु ? दोनों एक दूसरी से भयंकर [झुक कर मेज पर सिर रख देते हैं—फिर एकाएक खड़े होकर भगवंतसिंह का हाथ पकड़कर] चले जाओ मोटर से जाओ और अगर अभी तक वैसा न हुआ हो . कदाचित ईश्वर ने बचा दिया हो तो . फिर नहीं जाता शैतान [क्रोध के आवेश में उनका सिर हिल उठता है। भगवंत सिंह बाहर निकल जाता है। माहिरअली का भीतरी दरवाजे से प्रवेश]

माहिरअली—खाना तैयार है हुजूर।

मुरारीलाल—[कुर्सी पर बैठ कर पीछे की ओर सिर झुकाकर] माहिर...

माहिरअली—[उसके पास पहुँचकर] हुजूर

मुरारीलाल—क्या होगा ? [गहरी साँस खींचता है]

माहिरअली—[विस्मय में] कोई तकलीफ है ? क्या हुआ सरकार

मुरारीलाल—इस बदमाश ने उसे मरवा डाला ?

माहिरअली—किसको ? किसने ? कब ? मैं तो नहीं .. जानता...क्या ?

मुरारीलाल—इसी रायसाहेब ने...उस लड़के को जो उस दिन यहाँ इसकी शिकायत लेकर आया था . जिसे मैंने डाँट दिया ..जो अपनी सरलता मे यह कह गया था—'अगर मैं मारा गया तो इसके उत्तरदायी हुजूर होगे।' मैं देख रहा हूँ उसने सच कहा था।

माहिरअली—[सन्न होकर] मरवा डाला ? मरवा डाला ? अभी गिरफ़ार नहीं किया गया ? राय साहब है न, हाँ आनरेरी मैजिस्ट्रेट है गिरफ्तार नहीं हुआ होगा भी नहीं . रुपया होना चाहिये। खून छिपा लेना क्या है ? उसकी नई औरत और बूढ़ी माँ का क्या होगा ? सरकार.. उनकी जिन्दगी कैसे बीतेगी ? [एकाएक फर्श पर बैठ जाता है]

मुरारीलाल—यही तो मैं भी सोच रहा हूँ . माहिर ..

माहिरअली—मैंने तो आपसे तभी कहा था उसे मरवा डालेगा। तो उसे मरवा कर यहाँ आया ?

मुरारीलाल—उसे मारने के लिये बदमाशों को ठीक कर आया है। लेकिन शायद ईश्वर बचा ले।

माहिरअली—उसका उस दिन इस शैतान की कार्रवाइयों से घबड़ा कर साथ ही साथ हँसना और रोना मुझे तो नहीं भूल रहा है। कच्ची उमर में गिरस्ती का बोझा पड़ गया। हुजूर उस शैतान के साथ उस लड़के का कोई सगा रिश्तेदार था . वह राय साहब से कर्ज ले चुका है। अपने कान से सुना मैंने उस शैतान के बच्चे को सिखलाते हुए कि कह देना साहब से कि तुम उस

लौंडे के नातेदार हो उसके वालिद के मामू के लड़के हो तुम्हारा एतबार साहब को होगा

मुरारीलाल—हूँ...जरूर ऐसी बात थी उसके चेहरे से शैतानी टपक रही थी। और मालूम होता है उसकी भी राय से वह मारा गया होगा। मनुष्य का स्वार्थ . इसके लिये आदमी क्या नहीं कर डालता ? [कमीज का आस्तीन समेट कर] इधर देखो मेरे रोयें फूट गये हैं . जैसे सिर मे चक्कर आ रहा है . क्या समझते हो अगर वह मारा गया तो उसमे मेरी वजह ..

माहिरअली—मैंने पहले कहा था। वह आप ही की वजह से मारा गया होगा। कानून के डर से इस बेईमान की हिम्मत इतनी नहीं होती।

मुरारीलाल—[सम्हलकर] मेरी वजह से नहीं माहिर । संसार मे भलाई बुराई का भाव अब नहीं है। आज इसने दस हजार दिया है। दस दस रुपया देकर यह गवाहो को बिगाड़ देता। 'एक हजार भी नहीं खर्च होता और यह छूट जाता। आजकल का कानून ही ऐसा है। इसमे सजा उसको नहीं दी जाती जो कि अपराध करता है सजा तो केवल उसकी होती है जो अपराध छिपाना नहीं जानता। बस . यही कानून है। आज यह मुझसे कबूल कर गया कि उसके मरवाने का इन्त-जाम वह कर आया है। अगर वह मारा गया और मैं चाहूँ भी कि इसे सजा दूँ तो सबूत नहीं मिलेगा। ऐसी हालत मे मेरी तबीअत, मेरी अन्तरात्मा कहेगी इसे दण्ड देने के लिये और

कानून कहेगा छोड़ देने के लिये। मुझे भी मजबूर होकर कानून की बात माननी पडेगी और वह छूट जायेगा। हम लोग मनष्य और उसके अधिकार की रक्षा के लिये कुर्सी पर नहीं वैठते . हम लोगो का तो काम है केवल कानून की रक्षा करना। यही बुराई है और इसीलिये यह सब हो रहा है। उससे रुपया लेकर मैंने कोई बुराई नहीं की। इसी तरह दस पॉच बार देना पड़ जायेगा उसकी गरमी स्वत' शान्त हो जायेगी। चन्द्रकला को भेजना तो .

माहिरअली—लेकिन खाना तो तैयार है।

मुरारीलाल—आज मैं भोजन नही करूँगा मुझे इसका रंज है। क्या देख रहे हो ? जाओ। इस तरह आज उपवास कर जाने से मुझे सन्तोष होगा। अधिक से अधिक यही सहानुभूति मैं उसके साथ दिखला सकता हूँ।

[माहिरअली का प्रस्थान। मुरारीलाल दीवाल की आलमारी खोल कर एक पुस्तक निकालते हैं। पुस्तक मेज पर रख कर उसके पन्ने इधर उधर करने लगते हैं। कई पन्ने इधर उधर उलट पुलट कर पुस्तक को खुली मेज पर छोड़कर आलमारी से दूसरी पुस्तक निकालते हैं, उसके पन्ने भी जल्दी जल्दी उलट कर देखने लगते हैं, थोडी देर तक मेज के किनारे खड़े होकर जैसे कुछ पढते हैं, कभी कभी अग्रेजी के अधूरे शब्द उनके मुँह से निकल पड़ते हैं। मुरारीलाल क्षण भर के लिये ऊपर छत की ओर देखते हैं। दूसरे ही क्षण पुस्तक उठा कर कमरे मे फर्श पर फेंक देते हैं पुस्तक के गिरने के साथ ही धाँय-सी आवाज होती है, और

वह कमरे के बाहर होकर गोसवारे से नीचे उतरकर, बाईं ओर मुड़कर, आड़ में हो जाते हैं।

[माहिरअली और चन्द्रकला का प्रवेश]

[कमरे में चारों ओर देख कर] कहाँ हैं ? [चन्द्रकला इस ओर के गोल कमरे की ओर बढ़ती है और माहिरअली दूसरी ओर के गोल कमरे की ओर जाता है। मेज की ओर बढ़ता है] नहीं हैं न ?

माहिरअली—नहीं। उन्हें अफसोस हो रहा है।

चन्द्रकला—[धीमे स्वर में गाने लगती है]

अब के सोचे ना बनेगा, मालिक सीताराम हो .

[कई बार धीरे धीरे यही एक पंक्ति गाती है। माहिरअली उसके मुँह की ओर देखने लगता है]

माहिरअली—आपको तो गाना

चन्द्रकला—[जैसे गुनगुना कर] मेरे मन में आया था कि बाबू जी से कह दूँ कि वह बेचारा झूठ नहीं, बिल्कुल सच, कह रहा है। उसका हँस कर उनसे बातें करना उठ कर चला गया तो जैसे यह कमरा सूना हो गया। [गंभीर होकर] यदि मैं पुरुष होती . तब तो . [माहिरअली की ओर ध्यान से देखती हुई] हाँ अगर मैं मर्द होती तो जरूर कह देती और देखती कि किस तरह यह कमीना रायसाहब राक्षस की तरह तो वह दुष्ट देखता है। देखो तो बाहर [आँख से बाहर की ओर संकेत करती है]

[माहिरअली का प्रस्थान। भीतरी दरवाजे से मनोरमा का प्रवेश। मनोरमा की अवस्था चन्द्रकला से दो साल कम है। शरीर उसका कुछ

दुवला और अर्धविकसित-सा है। बाल खुले, रुक्ष और अव्यवथित हैं। बाईं ओर से वालों की एक लट दायें कान से होकर सीधे आगे की ओर नीचे की ओर लटक रही है। उसकी आँखें नितान्त चञ्चल और चमकती हुई हैं। भौंह के वाल इतने लम्बे हैं कि दोनों बगलों में दाईं और बाईं ओर घूम कर छोटे वड़े कई वृत्त वना रहे हैं। उसके शरीर का रंग विल्कुल पछाही चम्पे का है। मनोरमा दोनों हाथों में एक चित्र लेकर ध्यान से देखती हुई मेज की ओर वढती है।]

मनोरमा—लो यह भी बन गया ?

चन्द्रकला—[चौंककर] बन गया ? आज ही ?

मनोरमा—[चित्र उसके सामने वढ़ाकर] देखो इसीलिये न तुम मुझे अनन्तकाल तक रोकना चाहती थीं ?

चन्द्रकला—लेकिन अब तो व्यर्थ है। अब तो शायद वह संसार में ही नहीं रहा।

मनोरमा—अरे! क्या कह रही हो ?

चन्द्रकला—उस दुष्ट राय साहब ने उसे मरवा डाला !

मनोरमा—[स्थिर आँखों से सामने दीवाल की ओर देखती हुई] मरवा डाला ? उसकी मुस्कराहट, उसकी हँसी पर भी उसे दया नहीं आई ? अरे! अभी तो वह फूल खिला भी न था। उसने भी कोई अपराध किया होगा ? उससे भी किसी का अपकार हो सकता है ? [चित्र की ओर देखती हुई] नहीं जी नहीं . तुमने कहाँ सुना ?

चन्द्रकला—कहाँ वताऊँ ? उसने बाबू जी से स्वयं स्वीकार किया और उसी लिये दस हजार रुपया दे गया है।

मनोरमा—[गम्भीर होकर] अच्छा तो उसका मूल्य केवल दस हजार मैंने ही उसे उस दिन अमूल्य समझ लिया और इसीलिये निष्प्रयोजन यह चित्र बनाने लगी केवल अपनी कला की परीक्षा के लिये। कला के 'अमूल्य' के लिये संसार मे जगह नहीं। तो अब इसे क्या करूँ ?

चन्द्रकला—मुझे दे दो या अपने पास रक्खो .

मनोरमा—अपने पास ? यह आग ? और तुम्हारे पास भी नहीं . तुम क्या करोगी ?

चन्द्रकला—तब क्या होगा ?

मनोरमा—माहिर ने कहा था . . [कुछ सोचकर] उसका विवाह हो चुका है न ?

चन्द्रकला—हाँ लेकिन उसका विवाह नही होना चाहिये था।

मनोरमा—तो इस तरह तो मेरा विवाह भी नही होना चाहिये था।

चन्द्रकला—इसमे क्या सन्देह है ?

मनोरमा—लेकिन मेरे लिये तो सन्देह है। आठ वर्ष की थी तभी शादी हुई। दो वर्ष के बाद ही वह मर गए। तब से इधर आठ वर्ष बीत गया। [एकाएक चुप होकर चित्र ध्यान से देखने लगती है]

चन्द्रकला—तुम्हे अपने विधवा होने का दुःख नहीं है ?

मनारमा—[विस्मय के स्वर में] दुःख [गम्भीर होकर]

जिस वस्तु का अनुभव हुआ ही नहीं उसके अभाव का दुःख क्या ?

चन्द्रकला—तुम कह क्या रही हो ?

मनोरमा—मैं [चुप होकर कुछ सोचने लगती है]

चन्द्रकला—हाँ, हाँ, तुम । तुमने मुझे स्तम्भित कर दिया ।

मनोरमा—[मुस्कुराकर] संसार तो ईश्वरमय है फिर माया है कहाँ ?

चन्द्रकला—लेकिन ईश्वर और माया की बात कहाँ से आ पड़ी ? बात तो थी यह चित्र क्या होगा ?

मनोरमा—यह चित्र किसी प्रकार उसकी स्त्री के पास भेज देना चाहिये ।

चन्द्रकला—लेकिन वह क्या करेगी ? अगर वह अशिक्षित हो . उसके भीतर कला की भावना न हो

मनोरमा—कला की भावना किसके भीतर नहीं होती ? शिक्षा और कला का सम्बन्ध कुछ नहीं है । कला का आधार तो है विश्वास और शिक्षा का सन्देह । इन दोनों को एक ही साथ रख देना दो शत्रुओं को बाँध कर एक साथ समुद्र में फेंक देना है । यह काम माहिर से हो सकेगा । किसी तरह यह चित्र उसकी स्त्री के पास पहुँचना चाहिये ।

चन्द्रकला—खूब कह रही हो । [सिर हिलाकर] चित्र बनवाया मैंने और भेज दूँ उसके पास ?

मनोरमा—दान कर दो अपनी तरफ से, उसे इसकी जरूरत है।

चन्द्रकला—दूसरा बना दो

मनोरमा—लेकिन वह कैसे होगा ?

चन्द्रकला—क्यों नहीं होगा ? इसे भी तो तुम्हीं ने बनाया है ?

मनोरमा—लेकिन इसका आधार तो साकार था. निराकार तो कला की वस्तु नहीं है न ?

चन्द्रकला—[चित्र की ओर संकेत कर] इसी को देखकर

मनोरमा—लेकिन तो फिर वह चित्र न होकर फोटो हो जायेगा। यही भेज दो।

चन्द्रकला—उहँ, तुम तो हठ-कर रही हो ? इसका उपयोग वह किस रूप में करेगी ?

मनोरमा—[गभीर होकर उसकी ओर एकटक देखती हुई] दिन को इसकी पूजा करेगी और रात को अपने हृदय पर रखकर सो रहेगी।

चन्द्रकला—ओह ! तुम्हारा व्यंग बड़ा निष्ठुर होता है। तुम्हारा हृदय इतना सूखा है, न मालूम उसमें कला की भावना कैसे जाग पड़ी ?

मनोरमा—इसका मतलब कि कीचड़ मे कमल नहीं उगना चाहिये। लेकिन जो स्वभाव है वह; कमल ताल के कीचड़ में उगेगा, लेकिन गंगा के बालू में नहीं। यही तो लोग नहीं समझते। [गंभीर होकर कुछ सोचने लगती है]

चन्द्रकला—क्या सोच रही हो ?

मनोरमा—यही तुमने अभी कहा है मेरा व्यंग निष्ठुर होता है।

चन्द्रकला—मैं समझती हूँ, ऐसा ही। तुम उस अभागिनी स्त्री के साथ व्यंग कर रही हो . जिसका संसार आज सूना हो गया होगा।

मनोरमा—इसीलिये तो कहा चित्र भेज दो . वह फिर किसी अंश तक भर उठेगा। सहानुभूति शब्दों में नहीं व्यक्त हो सकती बहन! कुछ करना चाहिये। आग के निर्धूम हो जाने पर उसकी दाहक-शक्ति बढ़ जाती है...तुम धूयें को आग समझ रही हो ?

चन्द्रकला—इसका मतलब ?

मनोरमा—यही कि तुम्हें उसके दुर्भाग्य का दुःख है लेकिन [चित्र की ओर सकेत कर] तुम उसके लिये इतना त्याग भी नहीं कर सकती।

चन्द्रकला—लेकिन मैं तो इसे अपने कमरे मे रखना चाहती थी . उस दिन की स्मृति मे, उसका वह हँसना, उसकी रतनार आँखें . लम्बी लम्बो, उसका वह उभरा हुआ मस्तक और उस पर काले बालों की दो चार लटें, पल भर में उसकी नजर कमरे में चारों ओर दौड़ गई . उसका हँसना तो जैसे एक साथ जूही के असंख्य फूलों का बरस पड़ना था।

मनोरमा—तुम्हारा यह शब्द-चित्र तो मेरे इस रेखा-चित्र से चढ जाता है।

चन्द्रकला—सो कैसे ?

मनोरमा—जूही के फूलों की वर्षा तो मैं नहीं दिखा सकी।

चन्द्रकला—लेकिन मेरा चित्र कल्पना को जगा नहीं सकता और तुम्हारा तो उसे सहस्रमुखी कर देता है।

मनोरमा—मेरा?

चन्द्रकला—हाँ, चित्र इतना सजीव मालूम हो रहा है [चित्र को ध्यान से देखकर] जैसे अभी हँस पड़ा है। एक दिन के लिये घड़ी भर के लिये यहाँ आये क्यों? जब इसी तरह चला जाना था। [चित्र को ध्यान से देखकर] चित्र का नाम क्या रखा है, तुमने। "यौवन के द्वार पर"। लेकिन इसका नाम होना चाहिये था "मृत्यु के द्वार पर" [उसकी ओर निर्निमेष देखती हुई] कैसे बनेगा यह.

मनोरमा—चित्र मे तो वह सदैव "यौवन के द्वार पर" रहेगा। चित्र मे तो वह मरा नहीं। लेकिन तुम तो इतनी विकल हो रही हो जैसे तुम उसके प्रेम मे...

चन्द्रकला—तुम जानती हो मैं किसे प्रेम करती हूँ प्रेम दो चार से तो हो नहीं सकता और फिर अब प्रथम दर्शन मे प्रेम का समय भी नहीं रहा। वह तो युग दूसरा था जब हृदय का रस संचित रहता था और अनायास किसी ओर बह उठता था। अब तो व्यय की मात्रा संचय से अधिक हो गई है। उसके साथ प्रेम की नहीं ..विनोद की बात हो सकती थी उसके साथ खिलवाड हो सकता था. तबियत बहलाई जा सकती थी.

[उसकी आँखों से आँसू चल पड़ते हैं]

मनोरमा—ऐं ! तुम तो रो रही हो ?

चन्द्रकला—[छाती पर हाथ रखकर] यहाँ दर्द हो रहा है साँस लेने को जी नहीं चाहता ।

मनोरमा—झूठ तो नहीं कहोगी ? बोलो । मै तुमसे कुछ पूछना चाहती हूँ ।

चन्द्रकला—अब, हाँ पूछो अब किस अभिप्राय से झूठ कहूँगी अब किस चीज को छिपाऊँगी और किस लिये ?

मनोरमा—मनोज बाबू से तुम्हारा चित्त टूट गया है क्या ?

चन्द्रकला—लेकिन उनसे मेरा चित्त लगा कब ?

मनोरमा—ऐं ? कभी नही ? तब तुमने क्यों कहा कि मैं जानती हूँ तुम किसे प्रेम करती हो ?

चन्द्रकला—लेकिन उस समय तो किसी प्रकार जीवन के साथ समझौता करना था फिर तुमने सत्य की कसौटी जो रख दी । आज मैं भी विधवा हो गई

मनोरमा—छी क्या बक रही हो ?

चन्द्रकला—तीक्ष्ण है न ? तब फिर सत्य के लिये क्यों ? सत्य तीक्ष्ण होता ही है ।

मनोरमा—तुम्हे अपनी मर्यादा का भी ख्याल नहीं है ? मान लो यही बात है तो तुम्हे इस तरह रोना चाहिये ? कोई सुनेगा तो क्या कहेगा ?

चन्द्रकला—कोई सुनेगा कैसे ? मैं किससे कहूँगी ? तुमने सुन लिया इसलिये कि मेरा सर्वस्व चले जाने पर सत्य, यह अन्तिम

आधार भी जाने लगा। बस इसीलियें इसीलिये [एकाएक कुर्सी पर बैठ कर चित्र से अपना मुँह ढॅक लेती है। मनोरमा उसके पास जाकर उसके सिर पर हाथ रखती है—धीरे धीरे उसके बाल पर हाथ फेरने लगती है। मुरारीलाल का प्रवेश। चन्द्रकला जल्दी से उठती है, चित्र को मेज पर रखकर शीघ्रता से उनकी ओर देखकर भीतर निकल जाती है]

मुरारीलाल—क्या हो गया जी इसे ? इसकी आँखें तो लाल हो रही हैं . जैसे रो रही थी। चन्द्रकला ! चन्द्रकला . !

मनोरमा—[संकोच के स्वर में] मैं अब यहाँ से जाना चाहती हूँ। इसी से उन्हें ..

मुरारीलाल—[आगे बढ़कर कुर्सी पर बैठते हुए] तुम जाना चाहती हो ? क्यों ? तुम्हारा कहीं घर नहीं है न ?

मनोरमा—कहीं घर बनाऊँगी।

मुरारीलाल—तब यही घर या बुरा है ? [उसका हाथ पकड़ कर ध्यान से उसका मुख देखते हुये] तुम्हे यहाँ कोई कष्ट है ?

मनोरमा—संसार की सोधी भाषा में जिस चीज़ को लोग सुख समझते है वह तो मुझे यही दो महीनो से मिल रहा है . समय पर स्वादिष्ट भोजन और सुख की नींद, सुन्दर वस्त्र . संसार का सुख तो इन्हीं वस्तुओ मे सीमित है। [गम्भीर होकर] यह सब होते हुए भी तो यह आपका घर है। मुझे अपना घर बनाना है।

मुरारीलाल—[मुस्कुराने का प्रयत्न कर] लेकिन मेरे घर को ही अपना घर समझ लेने मे तुम्हे अड़चन क्या है ?

मनोरमा—क़ानून और कला का साथ नहीं हो सकता न ? [गम्भीर होकर] कानून दण्ड देगा, कला क्षमा करेगी। कानून सन्देह करेगा, कला विश्वास करेगी। [अपना हाथ खींच कर मेज की दूसरी ओर खड़ी होती है]

मुरारीलाल—तुम्हारा हृदय प्रेम से नहीं ..

मनोरमा—[ओठ पर उँगली रख कर] इसलिये कि मैं विधवा हूँ।

मुरारीलाल—लेकिन तुमने तो अपने प्रेमी का मुख भी नहीं देखा ? तुम्हें इसका कोई ज्ञान नहीं।

मनोरमा—इन आँखों से तो कभी नहीं देखा लेकिन कल्पना की आँखों से नित्य देखती हूँ . नित्य। बीस वर्ष का स्वस्थ, सुन्दर, सम्मोहक शरीर, चन्द्रमा-सा मुख, कमल-सी आँखें, कमान-सी भौंहें, घने, काले नीलम से चमकीले बाल [आँख बन्दकर] वह स्वरूप इस समय मेरे सामने आगया है, देखिये तो शायद आपको भी देख पड़ जाय।

मुरारीलाल—[अन्यमनस्क होकर] मुझे तो देख पड़ रहा है यह चित्र। यही तो नहीं है ? अरे! यह तो रजनीकान्त का चित्र है उस लड़के का ओफ ?

मनोरमा—[चित्र की ओर देखती हुई] अच्छा नहीं बना क्या ?

मुरारीलाल—बिलकुल वैसा ही . जैसा वह था वैसा ही यह चित्र तुमने क्यों बनाया किस लाभ से ? [मनोरमा की ओर देखता है] इस चित्र से तुमको क्या फ़ायदा था ?

मनोरमा—कला की साधना अपने लाभ के विचार से नहीं

होती। गुलाब खिल रहा था, वसन्त आ रहा था, आधी रात को पूर्णमासी का चन्द्रमा धरती की ओर देख रहा था उसे देखकर मेरी कल्पना और भावना उत्तेजित हो उठो मैंने उसका चित्र बना दिया।

मुरारीलाल—तुम भी एक समस्या हो

मनोरमा—यह आप को कैसे मालूम ?

मुरारीलाल—इसलिये कि मैं तुम्हें समझ नही पाता।

मनोरमा—लेकिन आप इसकी कोशिश क्यों करते है ?

मुरारीलाल—तो क्या न करूँ ?

मनोरमा—हर्गिज नहीं। आप ही सोचिए दूसरो के दण्ड की व्यवस्था तो आप करते हैं। आपके दण्ड की व्यवस्था कौन करेगा ? और यह उचित भी नहीं है। कई दिनो से आप इस तरह का संकेत कर रहे है। आप अपनी मर्यादा भूल रहे हैं। मै विधवा हूँ। मेरे साथ परिहास का कोई अर्थ नही।

मुरारीलाल—मै तो इसे केवल परिहास नहीं सत्य बनाना चाहता था।

मनोरमा—सत्य का बना लेना इतना सरल होता तो फिर संसार से झूठ का नाम निकल जाता या कम से कम शराबी की शराब, हत्यारे की हत्या, चोर की चोरी यह सब कुछ सत्य हो उठता। इन चीजो की बुराई निकल जाती।

मुरारीलाल—अच्छा तो तुम कहाँ जाओगी ? मै तुम्हे रोकना नहीं चाहता तुम जा सकती हो।

मनोरमा—[मुस्कराकर] सत्य का सूत कच्चा था कितनी जल्दी टूट गया ? [सिर हिलाकर] आप मुझे रोकेंगे क्यों ?

मुरारीलाल—[कड़े स्वर मे] मैं तुमको बुलाने भी नहीं गया था।

मनोरमा—आपकी लड़की ने मुझे बुलाया था . चित्रकला सीखने के लिये। मैं यहाँ मजदूरी करने आई थी। इसमें आपकी कोई बड़ी अनुकम्पा नहीं है। और अगर आप की इच्छा हो तो मैं स्वीकार कर लूँगी कि मैं आपके यहाँ सम्मान के साथ रही, इसके लिये मै आपकी कृतज्ञ हूँ। बस शायद अब आप प्रसन्न हो जायेंगे। क्षमा कीजियेगा पुरुष आँख के लोलुप होते हैं, विशेषतः स्त्रियो के सम्बन्ध मे, मृत्यु-शय्या पर भी सुन्दर स्त्री इनके लिये सब से बड़ा लोभ हो जाती है।

मुरारीलाल—तुम चुप नहीं रहोगी ?

मनोरमा—भय की बात तो मैंने सीखी नहीं। लाल आँखो का असर अगर मेरे मन पर कुछ भी पड़ता तो अब तक तो मैं कभी की खो बैठी होती अपना चरित्र और अब तक ? नरक की सब से निचली तह मे पहुँच गई होती। एक चित्र मैंने आपका वनाया है, एक चन्द्रकला का, एक मनोज बाबू का और चौथा चित्र यह है। [चित्र उठा कर] तीन चित्र आप लोग ले लीजिये। इसे मैं ले जाऊँगी।

मुरारीलाल—पता नहीं रजनीकांत को इस समय क्या दशा होगी . जीता होगा या मर गया होगा।

मनोरमा—उहँ, मेरे लिये क्या ? घड़ी भर के लिए यहाँ

आकर मेरी कला को जगा गया . इतना सुन्दर चित्र अब तक मेरे कलम से नहीं बना। यही मेरा अन्तिम चित्र होगा ?

मुरारीलाल—अन्तिम क्यों ?

मनोरमा—मैं हृषीकेश जाऊँगी रंग और कलम गंगा में फेंक कर माला लूँगी।

मुरारीलाल—इसी अवस्था में ?

मनोरमा—और नही तो क्या मरने के समय, जब उँगलियाँ माला के साथ खिलवाड़ न कर सकेंगी जब हाथ काँपने लगेगा तब ?

मुरारीलाल—चन्द्रकला को भेजो तो नही मै ही जाऊँगा।

[मुरारीलाल का भीतरी दरवाजे से प्रस्थान। मनोरमा इधर उधर चित्र पर उँगली घुमाने लगती है। माहिरअली और मनोजशकर का बातें करते हुये प्रवेश]

माहिरअली—न कहियेगा अभी...अभी आप सब नहीं जानते . मेरी तबियत घबड़ा गई है।

[माहिरअली विस्तर और चमडे का सूटकेस बाईं ओर की गोल कोठरी में लेकर चला जाता है। मनोजशंकर आगे बढ़कर मेज के पास कुर्सी पर बैठता है और मनोरमा के हाथ से चित्र लेकर देखने लगता है।]

मनोजशकर—प्रसन्न तो हो ?

मनोरमा—मैं ?

मनोजशकर—हाँ तुम यहाँ और कोई है...जिससे पूछ

रहा हूँ ? वाह कितना सुन्दर चित्र है ? [चित्र देखने में जैसे तन्मय हो जाता है। मनोरमा उसकी ओर देखती रहती है] यह चित्र बिल्कुल कल्पित है ?

मनोरमा—नहीं.. एक लड़का यहाँ कई दिन हुये आया था। इसी परगने का कोई जमीन्दार था। उसके बाप को मरे अभी साल भर भी नहीं हुए. और उसे भी जैसा कि सुनती हूँ किसी रायसाहब और आनरेरी मजिस्ट्रेट ने मरवा दिया।

मनोजशंकर—ओह! माहिरअली इसी के सम्बन्ध में कह रहा था क्या ? [चित्र की ओर देखते हुए] मालूम होता है अब हँस देगा। इतना सुन्दर और सरल . "यौवन के द्वार पर " तुम्हारी यह भावना अभी नहीं मरी ? [एकाएक गंभीर हो उठता है]

मनोरमा—आज से तुम्हारी परीक्षा थी न ?

मनोजशंकर—थी, तो लेकिन अब परीक्षा नहीं दूँगा।

मनोरमा—राजनीति का काम करना है क्या ?

मनोजशंकर—नहीं...

मनोरमा—तब ?

मनोजशंकर—बीमार हूँ

[गहरी साँस लेता है। मुरारीलाल और चंद्रकला का प्रवेश]

मुरारीलाल—मनोज ? तुम कहाँ ? परीक्षा नहीं दी ?

मनोजशंकर—जी नहीं

मुरारीलाल—क्यों ?

मनोजशकर—कोई लाभ नही ।

मुरारीलाल—रुपया नहीं मिला क्या ?

मनोजशकर—मिला तो ।

मुरारीलाल—तब ?

मनोजशकर—रुपया मिला इसीलिए परीक्षा छोड़कर चला आया ।

मुरारीलाल—लेकिन मैं पूछता हूँ क्यो ? किस लिये ?

मनोजशकर—लेकिन मैं मै कहता हूँ इसलिये कि अभी पन्द्रह दिन हुये मुझे चार सौ रुपया आपने भेजा था। फिर दो सौ और क्यों भेज दिया ?

मुरारीलाल—तुम्हारे आराम के लिये ?

मनोजशकर—आपको केवल छ सौ रुपया वेतन मिलता है और छ सौ आपने मुझे भेज दिया। घर का काम कैसे चलेगा ?

मुरारीलाल—इसकी चिन्ता तुम्हे क्यो हो ?

मनोजशकर—इस सन्देह में कि इस प्रकार आपके नैतिक पतन की संभावना है। अपना सारा वेतन मुझे देकर आप अनुचित रीति पर अपने लिये रुपये ...

मुरारीलाल—हो सकता है . लेकिन तुम्हारा क्या ?

मनोजशंकर—[चित्र उठाकर] आप कह सकते है यदि यह मारा गया हो तो इसमे आपका अपराध किस अंश तक होगा ? [तीव्र दृष्टि से उनकी ओर देखता है]

मुरारीलाल—[सन्देह से] तुम्हें क्या हो गया है ?

मनोजशंकर—[गम्भीर होकर] आज पन्द्रह दिन से बाबू जी को बराबर स्वप्न मे देखता हूँ। मेरा मानसिक रोग बढ़ गया है [जोर मे सॉस लेकर] कलेजे से लौ उठकर जैसे आँख फोड़ कर निकल जाना चाहती है। यही दशा रही तो मैं दस पाँच दिन भी नहीं जी सकता। मेरे मरने से आपका क्या लाभ होगा ? [मुरारी लाल की ओर ध्यान से देखने लगता है]

मुरारीलाल—मैं तुम्हे अपने पुत्र से किसी अंश मे भी कम नही समझता, मैं तुम्हे मार डालना चाहता हूँ ? जिसके लिये चोरी करे वही कहे चोर ?

मनोजशंकर—दस वर्ष का समय निकल गया। आप रुपये के बल पर मुझे विनोद और ऐश्वर्य मे अन्धा बना देना चाहते हैं, जिसमें मैं आपसे न पूछूँ कि उन्होंने आत्महत्या क्यों की बाबू जी ने आत्महत्या क्यो की ? ज्यों ज्यों समय बीतता जा रहा है यह रहस्य मुझसे दूर होता चला जा रहा है, लेकिन मेरे मन में मेरी अन्तरात्मा मे जो आग लगी है वह कितनी दारुण है आप उसे देखना नहीं चाहते, इस तरह कब तक मेरा प्राण बचेगा ?

[मुरारीलाल उद्वेग से उसकी ओर देखने लगते हैं। सामने की ओर मे कई आदमी एक चिंडोला लेकर प्रवेश करते हैं और बँगले के बरामदे में उतार देते हैं। मुरारीलाल चौंक कर देखते हैं और आगे बढते हैं। बरामदे में पहुँच जाते हैं।]

मुरारीलाल—ऐं ! रजनीकान्त ! अन्त मे हो गया . मरवा ही डाला उस बदमाश ने ?

[चंद्रकला जल्दी से लाश के पास जाती है। रजनीकान्त आँख खोल देता है और चद्रकला की ओर देखने लगता है। उसका सिर फट गया है, खून की धार सिर से होकर नीचे पैर तक चली गई है, जिसमें कुर्ता, धोती रँग गई है। चद्रकला क्षण भर उसकी ओर देखती है]

चन्द्रकला—आह! अब भी मुस्कराहट?

[फिर रुमाल से अपना मुँह दबाती हुई भीतर चली जाती है। माहिर-अली वहीं फर्श पर रजनीकान्त की लाश के पास बैठ जाता है]

माहिरअली—आह! मार डाला। मार डाला बदमाशों ने हड्डियाँ टूट गई हैं। [मुरारीलाल झुककर रजनीकान्त की ओर देखने लगते हैं।]

दूसरा अंक

[बँगले के बरामदे में आगे की ओर कुर्सियाँ रक्खी हैं। बीच मे सामने की ओर एक आराम कुर्सी है। उसके दोनों बगलों से होकर चार काठ की कुर्सियाँ वृत्ताकार रूप में रक्खी हुई हैं। संध्या हो रही है। मनोजशंकर बरामदे की बाईं ओर के गोल कमरे से निकलता है। सामने आकर बाहर की ओर देखता है। काशी सिल्क का कुर्ता और बंगाली तौर पर दाईं ओर से बाईं ओर को रेशमी चादर डाले हैं—धोती भी बंगाली ढंग की चुनकर नीचे की ओर लटकती हुई पहने है। पैर में पंजाबी जूता है। शरीर की गठन तो सुदृढ है, लेकिन उसकी आँखें नीचे को धँस रही हैं, जिससे उसकी चिन्ता का पता लगता है। वहीं खड़ा खड़ा बाँसुरी बजाने लगता है। भीतर की ओर से मनोरमा का प्रवेश]

मनोरमा—[बरामदे में आकर] मुझे भी सिखलादो।

मनोजशंकर—[घूमकर] किसलिये ?

मनोरमा—जानते हो रात को मैं बहुत कम सो पाती हूँ

मनोजशंकर—लेकिन क्यों ?

मनोरमा—लेकिन क्यो ?

मनोजशंकर—मैंने तो कभी नहीं कहा कि तुम रात को न सोओ। कहा है कभी ?

मनोरमा—मुझे नींद नहीं आती ? [गम्भीर हो उठती है]

मनोजशंकर—अच्छा तो फिर बाँसुरी बजाने से नींद आयेगी ? नींद की दवा तो सुन्दर रही।

मनोरमा—नींद नहीं आयेगी तो योंही समय तो सुख से बीतेगा ?

मनोजशकर—लेकिन यह तुम कैसे जानती हो कि बाँसुरी बजाने मे सुख होता है। मेरा तो स्वास्थ्य इसी मे बिगड़ गया। डाक्टर गये ?

मनोरमा—अभी नहीं

मनोजशकर—क्या कर रहे हैं . ?

मनोरमा—कर क्या रहे हैं . देह दबा रहे हैं

मनोजशकर—देह दबा रहे है ? [मुस्कराकर] तुम भी तो

मनोरमा—परिहास समझ रहे हो ? चलकर देख लो। कभी सिर पर हाथ रखते हैं, कभी छाती पर, कभी बाँह पर, कभी जाँघ पर, मैं तो समझती हूँ कि वह खिलवाड़ कर रहे हैं।

मनोजशकर—वह उसके साथ खिलवाड़ कर रहे है और तुम मेरे साथ खिलवाड़ कर रही हो। [मनोरमा धरती की ओर देखने लगती है] क्यों इधर देखो ?

मनोरमा—[गम्भीर होकर] ठीक उसी तरह जिस तरह वे खिलवाड़ कर रहे है ?

मनोजशकर—नहीं . उनका खिलवाड़ घड़ी दो घड़ी . दिन दो दिन का है। लेकिन तुम्हारा तो शायद मेरे जीवन के साथ ही समाप्त होगा। उसका अन्त तो मेरा अन्त है न ?

मनोरमा—अभी केवल दो महीने हुये तुमने मुझे देखा है.

मनोजशकर—तो बस दो ही महीने से यह खिलवाड़ भी प्रारम्भ कर रक्खा है तुमने

मनोरमा—मैंने . ?

मनोजशकर—हाँ तुमने ।

मनोरमा—यदि मैं सीधे शब्दों में कह दूँ कि तुम झूठ कह रहे हो तुम्हारे हृदय को चोट पहुँचेगी। लेकिन मैं यह चाहती नही। मैंने तुम्हारे साथ किसी तरह का खिलवाड़ नही किया ! मैं तुम्हे चाहती हूँ तुम्हारे साथ एक प्रकार की आत्मीयता का अनुभव मैं करती हूँ ..लेकिन तुम जिस मोह मे पड़ गये हो . वह तो भयंकर है।

मनोजशकर—भयंकर है ?

मनोरमा—भयंकर है भयंकर। चन्द्रकला उस लड़के पर इतनी रीझ गई कि उसके लिये बीमार पड़ गई। हम लोगो को अपने से महान होना है मनोज ! तुम्हारे साहब भी मुझसे प्रेम करने लगे हैं—[गम्भीर होकर] दशाश्वमेध घाट पर भिक्षुकों मे एक एक टुकड़े के लिये द्वन्द चल पड़ता है वे सभी भूखे रहते हैं ज्ञान के लिये वहाँ लेशमात्र भी जगह नहीं है। उन्हीं भिक्षुको की तरह हो गई है तुम्हारी यह पुरुष जाति ।

[मनोजशकर उसकी ओर उद्विग्न होकर देखने लगता है] इस तरह क्यों देख रहे हो तुम्हीं कहो। [कुछ सोच कर] मैं विधवा हूँ इस ज्वालामुखी को यदि मैं कुछ समय के लिये छिपा भी लूँ तब भी मैं किस की बनॅ तुम्हारी या डिप्टी साहब की ? जहाँ

मनोरमा—च　च　च.. आज नहीं समझा तो फिर चन्द्रकला की तरह तुम्हारे लिये भी कोई नहीं　कोई आशा नहीं ..

[मनोजशंकर बाँसुरी बजाने लगता है। मनोरमा थोड़ी देर तक उसकी ओर देखती रहती है] नहीं मानोगे ?

मनोजशंकर—इसमें भी बुराई है ?

मनोरमा—इसमें एक प्रकार का विष एक प्रकार की नशा है।

मनोजशंकर—मैं तो अब बिना इसके जी नहीं सकता।

मनोरमा—विषाद का स्वर न बजाकर आनन्द का स्वर बजाया करो। सुई ले लेकर जीना अच्छा नहीं है जी।

मनोजशंकर—कहीं आनन्द है भी या योंही।

मनोरमा—कहाँ आनन्द नहीं है ? चित्त-वृत्ति का निरोध योग है और यही आनन्द है। जो चाहते हो वह न चाहो　आनन्द तुम्हारा है और तुम हो आनन्द के।

मनोजशंकर—मैं तो जीना नहीं चाहता।

मनोरमा—तब मरना चाहते हो। यही न ? मरना न चाहो जीवन तुम्हारा है।

मनोजशंकर—तुम्हें समझ लेना कठिन है।

मनोरमा—डिप्टी साहब के लिये भी मैं समस्या हूँ, और तुम्हारे लिये भी। मैं क्या करूँ ? किसके किसके लिये रोऊँ ? अपने लिये, तुम्हारे लिये, साहब के लिये अथवा चन्द्रकला के लिये ? चन्द्रकला की दवा के लिये डाक्टर आये हैं, हम मरीजों

की दवा कौन करेगा ? चन्द्रकला का रोग असाध्य है लेकिन हम तीनों का तो संघातक हो गया है।

मनोजशंकर—मेरा रोग तो तब तक अच्छा नहीं होगा जब तक मैं जान न जाऊँ कि उन्होने आत्महत्या क्यों की ?

मनोरमा—पुरुष का सबसे बड़ा रोग स्त्री है और स्त्री का सब से बड़ा रोग है पुरुष। यह रोग तो मनुष्यता का है और शायद मनुष्यता के विकास के साथ ही साथ इसका भी विकास हुआ. हाँ पहले इसकी कुछ विशेष अवस्था थी. लेकिन अब तो इस रोग का आक्रमण सभी अवस्थाओं में हो जाता है। इस चिरन्तन रोग के साथ तुम्हारा एक और रोग है। मै समझती हूँ कि

मनोजशंकर—इस सबका मतलब यही कि तुम मुझे अपने से दूर हटा देना चाहती हो।

मनोरमा—मैं तो तुम्हारा हाथ पकड़ कर संसार मे उतर पड़ना चाहती हूँ। संसार के लिये एक नया आदर्श पैदा करना चाहती हूँ और तुम चाहते हो कि मै अपने आँचल से तुम्हारा गला बाँध दूँ और अपने साथ ही तुम्हे भी ले डूबूँ। अगर तुम सचमुच मेरे शरीर पर ही नही रीझ गये हो. तुमने मेरा हृदय, मेरी अन्तरात्मा को समझ लिया है तो हाथ बढ़ाओ या लो [अपना हाथ बढाती है] पकड़ लो [मनोजशकर मत्र मुग्ध की तरह उसका हाथ पकड लेता है] तुम बाँसुरी बजाओगे। मैं चित्र बनाऊँगी। [कुछ सोचकर] मै विधवा हूँ और तुम को भी विधुर होना होगा। और इस प्रकार हमारा सम्मिलन आज एक जीवन का नहीं

अनेक जीवन का हो गया। [मनोजशंकर चिंतित होकर दूर आकाश की ओर देखने लगता है। मनोरमा उसका कंधा पकड़कर उसे ज़ोर से हिला देती है] चिन्ता नहीं नहीं . चिन्ता नहीं हँस तो दो जीवन पर और जगत पर ..

[मुरारीलाल का प्रवेश]

मुरारीलाल—[बनावटी स्वर में] तुम लोगो ने तो यहाँ नाटक-घर बना दिया।

[मनोरमा कमरे के भीतर जाकर खड़ी हो जाती है। मुरारीलाल बरामदे में निकल कर आरामकुर्सी पर बैठते हैं। उनके चेहरे पर अस्वाभाविक उद्वेग है]

मनोजशकर—क्या कहा आपने ?

मुरारीलाल—यही कि तुम लोगों ने यहाँ नाटक-घर बना लिया है।

मनोजशकर—शायद आप अभी नाटक देखकर आ रहे हैं ? उसी भावना से आप को भ्रम हो गया है।

मुरारीलाल—मैं नाटक देखकर आ रहा हूँ ?

मनोजशकर—[रूखे स्वर में] संभवतः। वहाँ और क्या था ?

मुरारीलाल—मै नाटक देखकर आ रहा हूँ जी, चन्द्रकला की धुकधुकी बन्द हुआ चाहती है।

मनोजशकर—[हँसता हुआ] हा . हा . हा हा ..आप भी तो रहते-रहते सपना देखने लगते हैं।

मुरारीलाल—इस बार तो तुम ने जैसे शिक्षा और संस्कार सब से असहयोग कर लिया है। तुम तो ऐसे नहीं थे।

मनोजशंकर—अभी मेरा विकास हो रहा है ?

मुरारीलाल—डाक्टर साहब को पता नहीं चल रहा है उनको सन्देह है, कोई रोग का साफ़ लक्षण नहीं देख पड़ता वे डर रहे हैं, कहीं हृदय की गति न बन्द हो जाय। तुम तो उसे देखने भी नहीं गये और वह ..

मनोजशंकर—मैं गया था। दस मिनट से अधिक उसके पैताने खड़ा रहा। उसने एक बार मेरी ओर देखा, फिर सिर के ऊपर तकिया रख कर करवट लेट गई। मैं उसके इस व्यवहार को अपना अपमान क्यों समझूँ ? आत्मघाती पिता के पुत्र के लिये संसार में सम्मान कहाँ ? [गम्भीर हो उठता है]

मुरारीलाल—[कमरे की ओर घूमकर] तुम्हारे पति को मरे कितने वर्ष हुये ?

मनोरमा—[वहीं से] मैंने उन्हे देखा नहीं था विवाह की कोई भी स्मृति मेरे पास नहीं है।

मुरारीलाल—हम सभी लोग दुखी हैं।

मनोरमा—मुझे कोई दु ख नहीं है।

मुरारीलाल—तुम स्त्री होकर यह कह रही हो ?

मनोरमा—पुरुष तो वैधव्य का अनुभव कभी नहीं न करते ? इसलिये यह बात स्त्री ही कह भी सकेगी। और दूसरे मेरा जीवन पिताजी की चाँदी की तरह, चाँदनी की तरह, हंस की

तरह, श्वेत दाढ़ी और मूँछ की छाया मे रंग और कलम के साथ बीता है। मुझे उस तरह के किसी अभाव का अनुभव हुआ ही नहीं। जो मिला नहीं उसका चला जाना . उसका सुख क्या है ? और दुख क्या है ?

मुरारीलाल—[कुछ सोचकर] तुमने रजनीकान्त का चित्र अपनी तबियत से बनाया था ?

मनोरमा—रेखा-चित्र तो मैने स्वयं बना लिया। मेरा विचार था यहाँ से चले जाने पर उसमे रंग भरूँगी लेकिन चन्द्रकला ने मुझे बहुत मजबूर कर उसे पूरा कराया है।

मुरारीलाल—चन्द्रकला ने ? मुझे उसके आहत होने का बड़ा दुःख है . मेरा हृदय जानता है या भगवान जानते है।

मनोजशकर—और उसी दुःख मे चन्द्रकला बीमार पड़ी है। आप जानते है मैं मनुष्य की कमज़ोरियो का कितना निष्ठुर आलोचक हूँ इसीलिये मैं उसकी बीमारी को नाटक समझ रहा हूँ।

मुरारीलाल—लेकिन मै तो समझता हूँ [एकाएक चुप हो जाता है]

मनोजशकर—आपने देखा नहीं ? यहाँ जब उसकी लाश लाकर रक्खी गई वह किस तरह उसकी ओर आकर देखने लगी और किस तरह मुँह मे रूमाल डाल कर भाग गई। यहाँ ठहरती तो रो पड़ती।

मुरारीलाल—[गहरी साँस लेकर] उसका हृदय बहुत कोमल

है मनोज! उसका घाव देखकर घबड़ा उठी। उसी घबड़ाहट में उसने तुम्हारा ख्याल नहीं किया नहीं तो जिस दिन तुम्हारा पत्र मिला था, उस दिन वह घबड़ा उठी थी।

मनोजशकर—सम्भव है। मेरे कल्याण की भावना उसके हृदय में है, लेकिन

मुरारीलाल [सहम कर] लेकिन क्या?

मनोजशकर—जाने दीजिये। कुछ नहीं।

मुरारीलाल—नहीं नहीं.. कहो तो।

मनोजशकर—वह बात आप से कही नहीं जा सकती। [दो डग आगे बढ़ कर बाहर देखने लगता है]

मुरारीलाल—लेकिन मैं तो उससे अधिक तुम्हीं को असावधान पा रहा हूँ। मनोरमा! डाक्टर साहब को यहाँ तो भेजो।

[मनोरमा का प्रस्थान]

मनोजशकर—मैं असावधान हूँ?

मुरारीलाल—हाँ तुम। तुम अच्छी तरह जानते हो कि मेरी भविष्य की आशा क्या है? मैं तुम दोनो को किस रूप मे देखना चाहता हूँ?

मनोजशकर—वह तो मैं जानता हूँ। लेकिन केवल आप के चाहने से वह पूरा तो नहीं हो जायगा? हम दोनो एक दूसरे से कितनी दूर है इसका ध्यान भी तो आप को रखना होगा।

मुरारीलाल—लेकिन यह दूरी तुम्हारी ही बनाई हुई हो तो ..

मनोजशकर—नहीं मैंने इस दूरी के लिये कोई ऐसा काम

नहीं किया है .लेकिन मुझे इसका अधिकार भी तो है। अगर मैं अपने लिये यही उपयोगी समझूँ

मुरारीलाल—तो इसे मैं अपना और तुम्हारा दोनों का दुर्भाग्य समझूँगा। अभी जो तुमने इस विधवा का हाथ पकड़ा था . इसका अर्थ क्या है ? मैं भी कभी तुम्हारी अवस्था का था इन चीजों को मैं खूब समझता हूँ।

मनोजशंकर—[उद्वेग में] यह विधवा यह विधवा आप नहीं जानते या शायद जानते भी हैं ..अग्नि है, हलाहल है, कोई भी पुरुष उसे छूकर या पीकर जी नहीं सकता। उसका हाथ मैंने इस-लिये नहीं पकड़ा था कि मैं उसे स्त्री बनाऊँगा...उसका हाथ तो मैंने इसलिये पकड़ा था कि मैं जीवन भर अविवाहित रहूँगा।

[बाँसुरी बजाता है। मुरारीलाल झपट कर कुर्सी से उठते हैं और उसके हाथ से बाँसुरी छीन लेते हैं। मनोजशंकर कई बार सिर हिलाकर गोसवारे के नीचे थूकता है] इतनी जल्दी क्या पड़ी थी ? . मुँह से खून आ गया।

मुरारीलाल—मुझे गोली मार कर तुम बाँसुरी बजा रहे हो ? तुम

मनोजशंकर—किसी को गोली मारना यदि वीरता है तो गोली मार कर बाँसुरी बजाना तो वीरता से बढ़कर वीरता और महानता से बढ़कर महानता है। यदि यह मुझ से सम्भव हो सके तब मैं समझूँगा कि मैं अपने से बड़ा हूँ...मनुष्य से बड़ा हूँ।

मुरारीलाल—मनुष्य से बड़ा तो केवल देवता होता है।

मनोजशंकर—हाँ, उस हालत मे मैं केवल देवता हूँ।

मुरारीलाल—यह व्यंग करना तुम ने कहाँ सीखा ?

मनोजशंकर—जीवन इस तरह की बातें नित्य सिखलाता है। बहुत से लोग जीवन को शिक्षा की ओर ध्यान नहीं देते ..इस-लिये उपदेशक और दार्शनिक बनते हैं, लेकिन जो उसे सुनते हैं समझते हैं मेरी तरह शायद व्यग करते हैं।

मुरारीलाल—तुम मेरा कुछ भी विचार नहीं करते ?

मनोजशंकर—यह कैसे ?

मुरारीलाल—तुम कहते हो कि तुम जीवन भर अविवाहित रहोगे ? इतना ही नहीं कितनी अनर्गल बातें तुम कह जाते हो ? दस वर्ष का समय बीत गया। मेरा व्यवहार तुम्हारे साथ कैसा रहा तुम स्वयं जानते हो ?

मनोजशंकर—मेरा दुःख मेरी आत्मा में सब ओर से व्याप्त हो चुका है। यदि मैं व्यंग न करूँगा . तो मैं जीवित नहीं रह सकता। मुझे मरना होगा। आपकी यही इच्छा हो तो कहिये मैं अपना रास्ता बदल दूँ।

मुरारीलाल—मैं तो अपना सब कुछ छोड़कर तुम्हें सुखी करना चाहता हूँ। यही करता रहा हूँ . यही करता रहूँगा। मेरी इच्छा यह न थी कि रजनीकान्त मारा जाय लेकिन भगवन्त से रुपया ले लेना मैंने बुरा नहीं समझा। उसने दूसरों को लूट कर रुपया इकट्ठा किया है ..यदि इसे लूटना भी माना जाय तो उसे लूट

लेना मैंने बुरा नहीं समझा। इसके अतिरिक्त तुम्हारे विदेश जाने की समस्या भी हल हो जाती थी।

मनोजशकर—[गंभीर होकर] तो फिर रजनीकान्त की हत्या का प्रधान कारण मेरी विलायत-यात्रा है। जिसके लिए मैंने कभी इच्छा नही की यहाँ तक कि मैने कभी स्वप्न भी नहीं देखा। जीवन और शक्ति के उस लोक में मुझे क्या मिलता ? मैं वहाँ किस आशा से जाता ?

मुरारीलाल—सिविल सर्विस के लिये।

मनोजशकर—यही तो आप नही समझते कि मैं मृतक .. [सिर हिलाकर] जिसका भूत जी रहा है आज दस वर्ष से, वह सिविल सर्विस की इच्छा क्यों करता ?

मुरारीलाल—तुम अपने को मृतक कह रहे हो ?

मनोजशकर—अवश्य मैं मृतक तो हूँ ही। मै आत्मघाती पिता का पुत्र किसी बड़े पद, किसी बड़ी मर्यादा के लिये मैं नहीं बनाया गया हूँ। जब तक मैं यह न जान जाऊँ उन्होंने आत्महत्या क्यो की क्यों की आत्महत्या उन्होने तब तक [एकाएक गंभीर होकर कुछ सोचने लगता है]

मुरारीलाल—[उद्वेग के स्वर में] ओह ! मालूम हो जायेगा जल्दी क्या है ? जिसके लिये

मनोजशकर—[काँपते हुए स्वर में] लेकिन हो जायेगा कभी मालूम ? इसी मे तो सन्देह है। उस समय मैं बारह वर्ष का था आज बाईस वर्ष का हूँ एक युग पूरा हुआ चाहता है एक

नई पीढ़ी आया चाहती है . लेकिन यह रहस्य उन्होंने आत्महत्या की क्यो की क्यो ? अभी ज्यों का त्यों बना है। यदि मैं आज मर जाऊँ ?

मुरारीलाल—[जैसे सचेत होकर] तो क्या होगा ?

मनोजशंकर—यह गुप्त बोझ मेरी आत्मा को दबाये रहेगा इस जन्म मे, दूसरे जन्म में, तीसरे जन्म में [स्वर के साथ ही साथ उसका शरीर भी काँपने लगता है]

मुरारीलाल—आत्महत्या उन्होंने की थी यह तो मैं जानता हूँ लेकिन क्यों ? किस लिये ? इस सम्बन्ध में तो मैं तुम्हे कोई विशेष बात नही बतला सकता।

मनोजशंकर—[चौंककर] आप ? आप अब भी छिपाना चाहते हैं ? तब तो शायद बाँसुरी की जगह मुझे पिस्तौल लेना होगा।

[उसका मुख भयानक हो उठता है और उसका शरीर आँधी के समय पेड़ की तरह हिलने लगता है।]

मुरारीलाल—[भय और आवेश मे] तुमसे किसी ने कुछ कह दिया क्या ? तुम मेरी ओर इस तरह क्यों देख रहे हो ? ईश्वर जानता है इसमे मेरा कोई अपराध नहीं। तुम व्यर्थ मुझ पर सन्देह कर रहे हो। वे मेरे मित्र थे। हम दोनों का सारा लड़कपन जवानी का दोपहर भी साथ ही बीता था। संसार जानता है हम लोग दो शरीर एक प्राण थे।

[कभी मनोज की ओर तो कभी धरती की ओर देखते हैं। उनके मुख का रंग एकाएक बिगड़ कर लाल, और अन्त में काला हो जाता है।

उनकी साँस वेग से चलने लगती है. जिससे उनकी छाती उठने और बैठने लगती है। बायें हाथ से अपनी आँखें मलने लगते हैं। मनोजशंकर क्षोभ और अवहेलना की दृष्टि से उनकी ओर देखता रहता है]

मनोजशंकर—[कड़े शब्दों में] कहते चलिये

मुरारीलाल—[कातर होकर] क्या कहूँ अब ?

मनोजशंकर - बस हो गया ? अब कुछ कहना नहीं है ?

मुरारीलाल—[सम्हलकर] नहीं

मनोजशंकर—[उँगलियों को कड़ी कर बायाँ हाथ सिर पर रखता है। अँगूठे के नीचे उसका बाँया कान इस तरह दब कर ऊपर को खिंच उठता है कि कान के नीचे का चमड़ा ऊपर को खिसकता हुआ-सा मालूम होता है। दायाँ हाथ बार बार हिलाते हुये] सूत्र रूप में नहीं. व्याख्या रूप में। सूत्र काल तो चला गया अब तो व्याख्या काल है। घडी दो घड़ी की व्याख्या में दस वर्ष के सूत्र साफ हो जायेंगे . उनका अर्थ व्यक्त हो जायेगा। बस कहते चलिये।

मुरारीलाल—तुमसे मुझे बड़ी आशा थी...इसलिये [उद्विग्न होकर उसकी ओर देखने लगता है]

मनोजशंकर—[क्षुब्ध होकर] आपकी आशायें वैसी ही रहें कुछ और बढ़ जायँ। [उसकी ओर तीव्र दृष्टि से देख कर सिर हिलाते हुये] मुझे इस योग्य बना दीजिये कि म आसानी के साथ उनका आपकी आशाओ का बोझ उठा सकूँ। आप अपना उपकार कीजिये। चन्द्रकला के मन में कोई जगह नहीं बना सका . इस-लिये नहीं कि मुझ में पुरुषत्व न था ..या मुझ मे वह कला वह

कौशल न था जिससे एक ओर एक हजार चन्द्रकला आँचल पसारकर भीख माँगती हैं। मेरे पास केवल एक वस्तु न थी, रजनीकान्त की मुसकान मे जो जादू था, उसकी हँसी में जो कम्पन, जो मस्ती थी, उसकी अबोध आँखों मे, उसके अबोध हृदय का जो आशापूर्ण प्रतिबिम्ब था, वह मेरे पास न था, मेरी शिक्षा, संस्कार, सब ओर से मेरा संयम और बड़प्पन.. बेकार साबित हुआ। मेरे मन में विषाद की आग जो जलती रही इस-लिये चन्द्रकला के लिये मुझमें कोई आशा न रही उसने देख लिया मुझमें जो कुछ था नीरस था, दूसरी ओर रजनीकान्त एक सुन्दर सपने की तरह [बाँसुरी हिलाकर] एक अधूरी तान की तरह उसके सामने आया और क्षण भर मे ही वह जीत गया . मैं हार गया। मैं पराजित होकर भी जी रहा हूँ . जीने का मत-लब मेरा यहाँ रहना, इस वातावरण में...[मुस्कराकर] स्त्री के लिये ज्ञान और विद्या का कोई मूल्य नहीं है। [फिर मुस्कराकर] प्लेटो के प्रजातन्त्र मे कवि को कोई स्थान नहीं मिला था स्त्री के प्रेमतन्त्र मे बुद्धि और ज्ञान को कोई स्थान नहीं मिला है।

मुरारीलाल—लेकिन तुम्हारा उसके चरित्र पर इस तरह का दोष लगाना...

मनोजशकर—किसके चरित्र पर ?

मुरारीलाल—चन्द्रकला के।

मनोजशंकर—मैं नहीं समझता .

मुरारीलाल—तुम साफ कह रहे हो कि वह उसे प्रेम करने लगी है और कैसे कहा जाता है ?

मनोजशकर—अच्छा तब

मुरारीलाल—तब यही कि तुम्हें यह कहने का अधिकार क्या है ? किसी के चरित्र पर इस तरह का आक्रमण

मनोजशकर—उहँ, इससे चरित्र का क्या सम्बन्ध ? अगर वह उसे प्रेम करने लगी तो इस प्रकार उसका चरित्र और निखर गया। इसमें बुराई कहाँ है ?

मुरारीलाल—इसमें बुराई नहीं है ?

मनोजशकर—बिल्कुल नहीं। प्रेम करना विशेषतः स्त्री के लिये कभी बुराई नहीं स्त्री जाति की स्तुति केवल इसीलिये होती है कि वे प्रेम करती हैं प्रेम के लिए ही उनका जन्म होता है . स्त्री चरित्र की सबसे बड़ी विभूति उसका सबसे बड़ा तत्व प्रेम माना गया है और उस पर भी यह तो उसका पहला प्रेम है। उसमें बुराई कहाँ है। प्रेम वकील से राय लेकर . जज से अधिकार-पत्र लेकर तो किया नहीं जाता। जो बात स्वतः स्वभाव है, प्रकृति है वह तो चरित्र का गुण है अवगुण नहीं।

मुरारीलाल—तुम तो मेरे दुःख को सौगुना कर देना चाहते हो। ओह !

मनोजशकर—सच कह देना भी अगर दुःख का कारण हो तो ..

मुरारीलाल—लेकिन इस सच के बिना भी तो काम चल जाता .

मनोजशकर—लेकिन काम चल जाने में तो मेरा बहुत कम

विश्वास है मुझे तो घंटे दो घंटे प्रकाश मिल जाय...मैं सारी रात अँधेरे मे काट लूँगा।

[मुरारीलाल उसकी ओर देखने लगते हैं] हाँ कहिये वह बात।

[भीतर की ओर से डाक्टर का प्रवेश। मुरारीलाल उठकर खड़े होते हैं। मनोज तिरछी आँखों से डाक्टर की ओर देखने लगता है]

डाक्टर—[मनोज की ओर देखकर] इस तरह आप की आँखें कमज़ोर पड़ जायेंगी। सदैव सीधे देखा कीजिये। [मनोज मुस्कराने लगता है]

मुरारीलाल—वैठिये। [दोनों कुर्सियों पर बैठते हैं] हाँ क्या हालत है ?

डाक्टर—अभी निश्चित नहीं कह सकता। इतना कह सकता हूँ कि अभी तक कोई शारीरिक लक्षण चिन्ता नहीं पैदा करता। वह बेचैन है छाती और सिर से पसीना चल रहा है। ज्वर तो उसे है नहीं। ऐसी हालत में हाँ हथेली और तलवे मे जितनी चाहिये गर्मी नहीं है आँखों का रंग हर पल बदल रहा है ओठ तो सूख गये हैं हीं। नाड़ी की गति बहुत खराव नहीं है... लेकिन हृदय की धड़कन [एकाएक चुप हो जाता है]

मुरारीलाल—[उत्सुक होकर] क्या . कहिये क्या हुआ .. हृदय की धड़कन

डाक्टर - मैंने तो आपसे तभी कह दिया कि मुझे सन्देह है और [कलाई की घड़ी देखकर] इतनी देर की देख-भाल के बाद

भी मैं उसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि सम्भवतः हृदय की धड़कन बन्द हो जाय।

मुरारीलाल—[घबड़ाकर कुर्सी से उठते हुये] हृदय की धड़कन बन्द हो जाय ?

डाक्टर—मैं खुद चिन्ता मे पड़ गया हूँ !

मुरारीलाल—[मनोज की ओर देखकर] सुनोजी तुम्हारे लिये तो नाटक था न ?

[डाक्टर विस्मय से मनोज की ओर देखता है]

मनोजशंकर—डाक्टर साहब को यह नहीं मालूम कि किस परिस्थिति मे और किस तरह उसे यह रोग हुआ। नहीं तो उनके लिये भी वह इतना भयंकर नहीं मालूम होता।

डाक्टर—[मुरारीलाल से] उसके नाड़ीजाल में रक्त को उत्तेजित करने के लिये दवा भरनी होगी।

मनोजशंकर—किस तरह ? सुई देकर...

डाक्टर—हाँ.

मनोजशंकर—इसका मतलब कि अब आप उसके भीतर रोग पैदा करना चाहते हैं। अब तक रोग रहा या नहीं, लेकिन अब जरूर हो जाना चाहिये। लेकिन मैं तो नहीं चाहूँगा कि उसके शरीर में व्यर्थ के लिये पीड़ा पैदा की जाय।

डाक्टर—[मुस्कराकर] अच्छा, बाँसुरी हाथ में है। कवि और गायक भावुक जीव होते हैं। आप सूई देना कैसे बरदाश्त कर सकें ? लेकिन मैं आप को विश्वास दिलाता हूँ कि उसकी

चिन्ता मुझे आप से कम नहीं है। अन्तर केवल इतना है कि आप उसके शरीर को कष्ट नहीं देंगे चाहे वह मर जाय लेकिन मैं जिलाना चाहूँगा चाहे उसके शरीर को कष्ट हो।

मनोजशंकर—आपको कैसे निश्चय हो गया कि उसके हृदय की धड़कन बन्द हो रही है ?

डाक्टर—लक्षण ऐसे ही हैं ......

मनोजशंकर—दो तरह के रोगों के भी लक्षण कभी कभी एक से होते हैं।

डाक्टर—खैर बहस पीछे कीजियेगा। उसे अच्छा हो लेने दीजिये मेरे पास इतना समय नहीं है और उसकी हालत भी अब चिन्ताजनक हो चुकी है। [मुरारीलाल से] पानी गरम कराइये।

मनोजशंकर—डाक्टर साहब, फीस जो कहिये दिला दी जाय लेकिन उसे व्यर्थ में कष्ट न दीजिये।

डाक्टर—बड़े विचित्र आदमी हैं आप . आपने पहले ही दवा क्यों नहीं कर ली ? अच्छे फीस देने वाले रहे। रोगी मर जाय और मैं फीस लेकर चलता बनूँ [मुरारीलाल से] आप कौन हैं ?

मुरारीलाल—[असमंजस में] मेरे एक सम्बन्धी

मनोजशंकर—डाक्टर साहब ! आप लोग रोग के कारण का अनुसन्धान नहीं करते। रोग की कल्पना कर दवा करते है। नतीजा यह है कि आप लोग संजीवनी लिये ही हैं और मृत्यु

संख्या नित्य बढ़ती जा रही है। चन्द्रकला की चिन्ता आप न करें मैं उसकी दवा कर लूँगा। घंटे भर के बाद आप इतना भी नहीं समझ सके कि उसका रोग शारीरिक नहीं मानसिक है। उसके मस्तिष्क के चेतन कीटाणु आकस्मिक आघात से सहसा क्षुब्ध हो उठे हैं ..आप बार बार हृदय की धड़कन बन्द कर रहे हैं। [मुरारीलाल से] डाक्टर साहब की फीस अगर चार रुपया हो तो कृपया चालीस देकर इन्हे विदा कीजिये। मैं उसे दस मिनट में अच्छा कर लेता हूँ। मुझे स्वयं उस तरह का रोग हो जाता है, हाथ पैर में लकवा मार जाता है, जीभ ऐंठ जाती है, आँखें अंधी हो जाती हैं [छाती पर हाथ रख कर] हूक उठ कर सिर फोड़ कर निकलने लगता है। डाक्टर साहब, एक मिनट में स्वाभाविक नाड़ी की गति कितनी है ?

डाक्टर—[रूखे स्वर में] सत्तर से लेकर अस्सी पचासो तक।

मनोजशकर—अधिक से अधिक कितनी है ?

डाक्टर—एक सौ तीस तक मौत हो जाती है।

मनोजशकर—एक बार एक मिनट में मेरी नाड़ी की गति एक सौ पैंसठ बार हो गई थी। मै अभी जी रहा हूँ

डाक्टर—[विस्मय से] और ताप कितना था

मनोजशकर—बिल्कुल स्वाभाविक अट्ठानवे या उससे कुछ ऊपर। डाक्टर साहब, मानसिक बीमारियो मे आप लोग कुछ नहीं कर सकते। बुरा न मानियेगा उस विषय की जानकारी आपकी अंग्रेजी प्रणाली में अभी बहुत कम है। आप लोग प्रत्येक

बीमारी की शारीरिक दवा करते हैं और शरीर को ही उसका कारण समझते हैं, गोकि अधिकांश बीमारियाँ मानसिक विक्षोभ के कारण होती है। आप की समझ में चन्द्रकला के हृदय की धड़कन बन्द हो रही है मेरी समझ में एक आकस्मिक घटना के कारण उसकी ज्ञान शिराओं में क्षोभ उत्पन्न हो गया है। आप यहीं रहिये मैं उसे अभी टहलने के लिये शहर की ओर ले जा रहा हूँ।

डाक्टर—लेकिन जब आप स्वत. बीमार हैं तो दूसरे की दवा आप क्या करेंगे ?

मनोजशकर—इसलिये कि मैं अपनी दवा स्वयं कर रहा हूँ और मुझे लाभ भी हुआ है। बीमारी तो मेरी अभी अच्छी नही हुई लेकिन इतना निश्चय हो गया कि मैं अभी मरूँगा नही। डाक्टरों की चली होती तो अब तक तो मैं कभी पंचत्व को प्राप्त हो गया होता। मनुष्य को स्वस्थ रखने के लिए जीवन बल उसके भीतर निरन्तर काम करता है. हम लोग बीमार पड़ते हैं मरने के लिये नहीं बल्कि स्वस्थ होने के लिये। प्रकृति ने तो बीमारी के साथ जीवन का सम्बन्ध जोड़ा था लेकिन आप लोग उसके साथ मृत्यु का सम्बन्ध जोड़ देते हैं और इसी में सब कुछ बिगड़ जाता है।

[मुरारीलाल कुर्सी की बाँह पर झुक कर आँखें बद कर लेते हैं]

डाक्टर—अर्थात् अब आप चिकित्सा की एक नई प्रणाली बना रहे हैं।

मनोजशंकर—जी नहीं ..उसी पुरानी परिपाटी को फिर से जगा रहा हूँ। मनुष्य अपनी आदिम अवस्था में आज से कहीं अधिक स्वस्थ था...इसीलिये कि तब डाक्टर न थे। मनुष्य था, और शक्ति और जीवन का केन्द्र प्रकृति थी। स्वास्थ्य के कृत्रिम साधनों और बोतल की दवाओं ने स्वास्थ्य की जड़ काट दी। स्वास्थ्य तो आप लोगों की आलमारियो मे बन्द है...लेकिन यह बहुत दिन नहीं चलेगा। प्रकृति अपना बदला लेगी। प्रकृति के रास्ते पर लौट आना.. नीरोग होना दोनों बराबर है।

डाक्टर—आपका आदर्श वही आदिम मनुष्य है जो असभ्य था नंगा रहना .

मनोजशंकर—आप अपने कपड़ों में भूल गये हैं...नहीं तो जिसे आप सभ्यता कहते हैं उसके साथ ही साथ विकार और बुराइयाँ भी बढ़ी हैं।

डाक्टर—मैं समझता हूँ आप बहस करना जानते हैं [मुरारी लाल से] आपने क्या निश्चय किया ?

मुरारीलाल—[जैसे नींद से उठकर] मैं...कुछ नहीं समझ पाता . मुझे कुछ भी नहीं सूझता।

डाक्टर—आपके पास इच्छा-शक्ति नहीं है। शब्दों का भ्रम जो पैदा कर सके आप उसी मे भूल जाते हैं अपने को ..

मुरारीलाल—जी हाँ आप ठीक कह रहे हैं। जैसे मैं अपने साथ अन्याय कर रहा हूँ। न तो मेरा कोई अपना जीवन है और न अपना आदर्श। अदालत के काम से भी चित्त घबड़ा रहा है।

मनोजशंकर—[कुछ सोचकर] कुछ नहीं। डाक्टर साहब! चन्द्रकला इस समय टहलने जा सकती है या नहीं ?

डाक्टर—मैं तो नहीं समझता वह पलँग से उठ भी सकती है।

मनोजशंकर—ह:—ह:—ह:—ह: [हँसते हुए] कृपा कर आप लोग [बाईं ओर के गोल कमरे की ओर दिखलाकर] आप लोग उस कमरे में चले जाइये। मैं उसे लेकर घूमने निकल जाऊँ, तो

डाक्टर—क्यों ?

मनोजशंकर—यह आप नहीं समझेंगे। उसे दवा की नहीं सहानुभूति और एकान्त की ज़रूरत है। सम्भव है आप लोगों को यहाँ देख कर उसके मन में फिर क्षोभ पैदा हो जाय। चुप-चाप चले जाइये ..उस कमरे में। मुझे भी प्रयोग कर लेने दीजिये। यहाँ देहातों मे अधिकांश रोग पूजा पाठ और तन्त्र मन्त्र से अच्छे किये जाते हैं। इन चीजों का प्रभाव सीधा मस्तिष्क पर होता है रोगी की इच्छा-शक्ति जाग जाती है और प्रकृति की शक्तियों को काम करने का अवसर मिलता है [प्रभाव के साथ] उठिये चलिये आप लोग उस कमरे में ..[मुरारीलाल डाक्टर का हाथ पकड़ कर उठते हैं और नीचे उतर कर दूसरी ओर निकल जाते हैं। मनोजशंकर भीतर चला जाता है। हरनन्दन सिंह बरामदे के सामने नीचे सहन पर आकर खड़ा होता है, इधर उधर चारों ओर सिर घुमाकर देखता है—फिर निकल जाता है।]

मनोजशंकर—[बँगले के भीतरी भाग से] तुम्हारा सन्देह व्यर्थ है। कह तो रहा हूँ, कोई नहीं है। डाक्टर साहब तो सूई देने का

प्रबन्ध कर रहे थे लेकिन मैं यह स्वीकार न कर सका। तुम्हारे बाबू जी ? कलक्टर साहब के बँगले पर गये हैं। डाक्टर साहब क्यों बैठे रहेंगे ? वह भी चले गये तभी .

[थोड़ी देर सन्नाटा रहता है। मनोजशंकर बीच वाले कमरे में आकर खड़ा होता है और स्वर के साथ बाँसुरी बजाने लगता है। मनोरमा और चन्द्रकला का प्रवेश। चन्द्रकला का चेहरा उतरा हुआ है और आँखें कुछ सूज गई हैं।]

मनोजशंकर—इस तरह शरीर छोड़ देना चाहिये ? संसार मे एक से बढ़कर दूसरे दुःख हैं।

चन्द्रकला—तुम मुझे क्षमा नहीं करोगे ?

मनोजशंकर—तुमने मेरा कोई अपराध नही किया ?

चन्द्रकला—[धीमे स्वर में] मै तुम्हे पहचान न सकी।

मनोजशंकर—लेकिन मुझे उसकी कोई शिकायत नहीं है। जो कमी मुझ में थी चलो आज नदी की ओर चलें घूमने हमारे विरोध आज सदैव के लिये मिट जायँ।

चन्द्रकला—कसे विरोध ? [विस्मय और चिन्ता से उसकी ओर देखती है।]

मनोजशंकर—जो साधारणतः प्रकट तो कभी नहीं हुये, लेकिन जो हम दोनों की आत्मा मे व्याप्त हो चुके थे और जिनके कारण हम लोग आज सदैव के लिये [चन्द्रकला निराश होकर उसकी ओर देखती है। मनोजशंकर अपना हाथ उसके कंधे पर रख देता है] तुम्हारी आँखों मे अभी सन्देह है...उसे मिटा डालो...निकाल

डालो उसे ..अभी कहा नहीं जा सकता तुम्हे कितने साहस और धीरज से काम लेना पड़ेगा ? [उसे एक हल्का धक्का देकर] जाओ कपड़े बदल आओ ..शाम हो रही है। देर न हो। इस प्रकार क्यो देख रही हो . घड़ी दो घड़ी नही, दिन दो दिन नहीं अगर इसी तरह खड़े होकर हम लोग जीवन भर कहते सुनते चले तब भी वह अन्तर नहीं मिट सकता ..वह तो स्वभाव और प्रकृति का अन्तर है ..हमारे जीवन का आधार है।

[चन्द्रकला का प्रस्थान। मनोरमा इस समय कमरे के उस ओर की दीवाल पर उँगली से रेखायें खींच रही है] दीवाल पर भी चित्र बनेंगे क्या ?

मनोरमा—[उसकी ओर घूम कर] बन सकते हैं। यह इतना महान चित्र जिसे हम संसार कहते हैं शून्य के आधार पर बना है। लेकिन मैं तो अब चित्र नहीं बनाऊँगी वही चित्र मेरा अन्तिम

मनोजशकर—रजनीकान्त का .

मनोरमा—हाँ [गम्भीर होकर कुछ सोचने लगती है]

मनोजशकर—क्या साच रही हो ?

मनोरमा—यही कि पुरुप के लिए प्रायश्चित्त करना पड़ता है स्त्री को। स्त्री-जीवन का सब से सुन्दर और सब से कठोर सत्य यही है। स्त्री इसीलिए दुखी है और पुरुप इसी को स्त्री का अधिकार समझता है और इसीलिए पुरुष और स्त्री के अधिकारो की अलग अलग पैमाइश हो रही है। अलग अलग

नक्शे बनाये जा रहे हैं, लेकिन यहाँ तो वे मिल जायेंगे। समस्या का एक और पहलू निकल आयेगा।

मनोजशकर—तुम अपनी बात कहो .

मनोरमा—मैं तो कल हृषीकेश के लिए चल पड़ूँगी।

मनोजशकर—अब किस लिये ?

मनोरमा—[विस्मय में] कोई नई बात तो नहीं हुई जी।

मनोजशकर—नई बात नहीं हुई ? [उसकी ओर ध्यान से देखने लगता है]

मनोरमा—नहीं तो केवल अपने को भूल जाने के लिए मैंने अब तक रंग और कलम से खिलवाड़ किया है . लेकिन मैं देखती हूँ मेरा हृदय धनी हुआ जा रहा है इतना धन मेरे किस काम आयेगा इसलिये मुझे इसे निचोड़ कर सुखा डालना है। रंगों की पिटारी गंगा मे फेक कर माला लेने में कल्याण है। अगर मैं अपने साथ न्याय करूँ तो मुझे स्वीकार करना पड़ेगा कि अपने निर्जीव चित्र के लिये मैं सदैव जीवन की कामना करती रही .. उसके साथ मुझे एक प्रकार का सुख और सहवास मिला है। लेकिन मुझे इसका अधिकार कहाँ था ? मैं अपनी आत्मा बेंचती रही हूँ, जो मैं पहले ही बेंच चुकी थी और पूरा मूल्य भी ले लिया था।

मनोजशकर—तुम तो कविता और दर्शन कह गईं !

मनोरमा—हिन्दू विधवा से बढ़कर कविता और दर्शन कहीं नहीं मिलेगा।

मनोजशंकर—युग बदल गया। समाज अपना कलंक मिटा रहा है। अब विधवायें न रहेंगी।

मनोरमा—[विस्मय से] वैधव्य मिट जायेगा ?

मनोजशंकर—क्यों ..विधवा...विवाह से .

मनोरमा—झूठ है ..झूठ .

मनोजशंकर—क्यों ? आज कल हो रहा है . जो ..

मनोरमा—विधवा विवाह हो रहा है . लेकिन वैधव्य कहाँ मिट रहा है ? समाज इस आग को बुझा नहीं सकता इसलिए उसे अपने छज्जे से उठा कर अपनी नींव में रख रहा है। तुम्हारे सुधारक, राजनीतिज्ञ, कवि, लेखक 'उपन्यासकार, नाटककार सभी विधवा के आँसुओं में बहते हुए देख पड़ रहे हैं। अपनी विशेषता मिटा कर संसार के साथ चलना चाहते हैं। वैधव्य तो मिटेगा नहीं . तलाक का आगमन होगा। अभी तक तो केवल वैधव्य की समस्या थी अब तलाक की समस्या भी आ रही है ! तुम्हारे कहानी-लेखक इस समस्या को कला का आधार बना रहे हैं और इस प्रकार संयम और शासन को निकाल कर प्रवृत्तियों की बागडोर ढीली कर रहे हैं। उनका उद्देश्य अधिक से अधिक उपभोग है और इसी को वे अधिक से अधिक सुख समझ रहे हैं। लेकिन उपभोग सुख है ?

मनोजशंकर—उपभोग सुख न हो लेकिन वैधव्य तो समाज का कलंक है ?'

मनोरमा—किस तरह जी ! यही तो समाज का आदर्श है !

स्त्री और पुरुष का सम्मिलित जीवन, सुख, दुख दोनो का न तो कोई शंका, न सन्देह और न तलाक। किसी भी परिस्थिति में समझौता, और सामञ्जस्य। इस प्रकार समाज की स्थिति दृढ़ है। सम्भव है इसमें भी बुराई हो . लेकिन जीवन नितान्त भला कहाँ है? विधवा विवाह और तलाक दो बुराइयों में से एक को पसन्द करना पड़ेगा...नहीं तो दोनो बुराइयाँ तो समाज को निगल जायेंगी।

मनोजशंकर—विधवा विवाह को भी तुम बुराई कह रही हो? स्वयं विधवा होकर

मनोरमा—च . च ..च [छाती पर हाथ रखकर] तुम्हारा आघात निर्दय हुआ मनोज . ! [उसकी ओर देखकर] राक्षसी . राक्षसी प्रहार .तुम इतना भी संयम नहीं कर सकते? और तुम पुरुष हो इतने छोटे हृदय और इतनी छोटी आत्मा के बल पर

मनोजशंकर—[उद्विग्न होकर] कैसे?

मनोरमा—तुम मुझे उत्तेजित कर रहे हो। मैं विधवा हूँ इसलिए मैं विधवा विवाह के पक्ष में वोट दूँ? यही न? [उसकी ओर ध्यान से देखती हुई] लेकिन मैं यह न करूँगी। विधवाओं के उद्धार के नाम पर यह आन्दोलन पुरुषों ने उठाया है अपने उद्धार के लिये। किसी प्रकृत-विधवा से पूछो जो अभी तक पुरुष के विषैले वातावरण मे न आई हो...देखो उसकी दृष्टि पृथ्वी में गड़ जाती है या नहीं? तुम्हारी समझ में विधवाय

समाज के लिए कलंक हैं मैं समझती हूँ समाज को चेतना के लिए विधवाओं का होना आवश्यक है। तुम जीवन का विशेषत: स्त्री के जीवन का दूसरा पहलू भी समझते हो देखते हो . उसके भीतर संकल्प है, साधना है, त्याग और तपस्या है यही विधवा का आदर्श है और यह आदर्श तुम्हारे समाज के लिये गौरव की चीज़ है . तुमने इसे कलंक कह दिया। [कुछ सोचकर] जितनी कोशिश इस आदर्श को मार डालने के लिये हो रही है अगर उतनी ही कोशिश इसे जीवित रखने के लिये होती तो तुम्हारा समाज और परिवार आज दूसरी चीज होता।

मनोजशंकर—तो अब मैं क्या समझूँ ?

मनोरमा—जो समझो...

मनोजशकर—इसका अर्थ यह कि [उसकी ओर देखने लगता है]

मनोरमा—कहते क्यों नहीं ?

मनोजशकर—तो उस समय सचमुच नाटक हो रहा था ?

मनोरमा—[कुछ सोचकर] ओह ! तुम अभी उसी भ्रम में पड़े हो !

मनोजशकर—मैंने तो समझा कि...

मनोरमा—तुमने मेरा हाथ पकड़ा था किसी आशा मे ..

मनोजशकर—मैंने समझा था अविवाहित रहकर तुम्हारे साथ रहूँगा !

मनोरमा—लेकिन उसमे कोई ऐसी चीज नहीं है जो तुम्हारे

पुरुषत्व के अनुकूल हो। मेरे साथ तुम रहते अविवाहित रह कर .. शब्द तो बड़े सुन्दर है लेकिन इनका मतलब क्या है ? किसी विधवा के साथ काई अविवाहित पुरुष [उसकी भौंह ऊपर को कई बार खिंच उठती है] कल्पना और भावुकता। मनोज बाबू ! साहित्य की कल्पना में तो कोई सन्देह नहीं यह सुन्दर चीज होगी लेकिन जीवन की वास्तविकता में यह कितनी भयंकर है।

मनोजशंकर—[उद्विग्न होकर] मुझे भी कुछ करना चाहिये मैं क्या करूँ ?

मनोरमा—पुरुष हो ..तुम्हारी अवस्था भी मुझ से अधिक है, शिक्षा भी तुम्हे ऊँची मिली है। तुम हर तरह से मुझसे योग्य हो . मुझसे क्यों पूछ रहे हो ? मेरे सामने तुम्हारा यह आत्म-समर्पण तुम्हारे लिए कितने अपमान की बात है तुम्हारा पौरुष इतना कुंठित क्यों हो रहा है ? वादे सभी सच्चे नहीं होते . इसीलिये सावधान रहना पड़ता है। मैंने जब विचार किया मुझे मालूम हो गया कि तुम मेरे मोह में इस तरह का संकल्प कर रहे हो। तुम्हारे मन में मेरे प्रति विकार बना रहेगा। [गले पर हाथ रखकर] अधिकांश शब्द यहीं से निकल पड़ते...उनका विश्वास करना.. मुझसे न पूछो तुम्हें क्या करना है . अपने पुरुषत्व से पूछो। तुम्हारा अपना मोह चन्द्रकला के मोह से कम नही है। वह स्त्री है न ? इसलिये तुमसे क्षमा चाहती है और तुम आत्म-ज्ञान का उपदेश दे रहे हो। उसे क्षमा कर दो। इस समय तुम्हारा प्रधान काम यही है।

मनोजशंकर—लेकिन किस तरह ?

मनोरमा—पहले यह स्वीकार कर लो कि तुम भी मोह में हो और वह भी मोह में है। न तुम उससे अच्छे हो और न वह तुमसे बुरी है [मनोजशंकर गंभीर होकर सोचने लगता है] वह अपना मोह छिपा नहीं सकी। ऐसा अनुमान करना कि वह रजनीकान्त को अपने पुरुष के रूप में प्रेम करने लगी है ठीक नहीं है। उसके हृदय पर उसकी हँसी और सरलता साथ ही साथ उसके सुन्दर शरीर का मोहक प्रभाव पड़ा था, जो समय के साथ ही साथ स्वयं मिट भी जाता। लेकिन उसका घायल हो जाना और वह भी संघातक रूप में, जिसमें बहुत कुछ दोष उसके पैदा करने वाले मुरारीलाल महाशय का है यह सब मिल कर पहाड़ हो उठा वह सम्हाल नहीं सकी। बहुत कुछ बुराई तो मेरे चित्र से हुई। शिव ने जैसे विष पचा लिया उसी तरह तुम भी इस बुराई को पचा लो इससे तुम्हारा पुरुषत्व दमक उठेगा। मालूम होता है आ रही है। रास्ते मे यह सब हो जाय . तुम लोग लौटो नये जीवन और नई आशा के साथ।

[मनोजशंकर चुपचाप उसकी ओर देखने लगता है। चन्द्रकला दो क़दम आगे बढ कर रुक जाती है। मनोजशंकर घूमकर उसकी ओर देखता है।]

मनोजशंकर—[उखड़ते हुये शब्दों में] च लो कब . की आई हो ? आओ चलें। [आगे बढकर उसका हाथ पकड़ लेता है।

दोनों उसी तरह हाथ पकड़े हुये बँगले के बाहर निकल जाते हैं। मुरारीलाल का प्रवेश।]

मुरारीलाल—तुम्हारा यहाँ आना मंगल हुआ मैं अब बच जाऊँगा।

मनोरमा—क्या है ? [जैसे नींद एकाएक टूट गई हो]

मुरारीलाल—तुमने वह कर दिया जिसकी मुझे आशा नहीं थी। तुम देवी हो।

मनोरमा—आपने कुछ सुन लिया क्या ?

मुरारीलाल—कुछ नहीं सब सुना है। दस वर्ष की आग शायद अब बुझेगी। तुम्हारा असली रूप मैंने आज देखा है।

मनोरमा—मैं अपनी प्रशंसा नहीं चाहती। मुझ से जिस किसी का जो उपकार हो जाय। विधवा जीवन तो केवल सेवा और उपकार का है।

मुरारीलाल—तुम सचमुच देवी हो।

मनोरमा—[क्षुब्ध होकर] चुप भी रहिये। इस प्रकार के विशेषण बहुत कुछ उपहास के लिये . मैं पूरी तरह से स्त्री... विधवा स्त्री बन सकूँ ..जो हूँ वह हो सकूँ यही बहुत है।

मुरारीलाल—कल जाना तुम्हारा निश्चित रहा। कुछ और रुक जाओ। तुम्हारी मदद से शायद एक बार मैं .

मनोरमा—जी नहीं। इस प्रकार मेरी शक्ति चली जायेगी हमारी सेवा जब होने को होगी हो जायेगी।

[मनोरमा का प्रस्थान। मुरारीलाल बाहर बरामदे में कुर्सी पर आकर बैठते हैं। माहिरअली का प्रवेश]

मुरारीलाल—क्या हाल है जी ?

माहिरअली—शायद बच जाय [सिर पर हाथ रखकर] यही एक घाव तीन इञ्च लम्बा और आधे इञ्च चौड़ा है। उन सब ने तो चाहा था जान से मार डालना। चौबीस निशान लाठी के कुल हैं।

मुरारीलाल—बहुत हैं। ऐसा काम करा दिया इसने।

माहिरअली—उसकी चोट देखकर मुझे चक्कर आने लगा लेकिन उसके मुँह पर तब भी मुस्कराहट थी।

मुरारीलाल—मुस्कराहट थी !

माहिरअली—उस दिन की तरह नहीं.. इतनी चोट और दर्द लेकिन उसके सफेद दाँत अब भी जैसे निकल पड़ना . राय साहब मिलना चाहते हैं।

मुरारीलाल—अब ? हर्गिज नहीं मैं बदनाम हो जाऊँगा . इस तरह और मैं तो उसका मुँह देखना नहीं चाहता।

माहिरअली—हरनन्दन कह रहे थे.. आपने जो कहा था शायद चालीस हजार आगया है। [मुरारीलाल गहरी चिन्ता में पड़ जाता है] मैंने तो कह दिया है साहब ऐसे रुपये पर लात मारते हैं।

मुरारीलाल—ऐं ! कह दिया लात मारते हैं ? चालीस हजार माहिर, मैं समझ नहीं पाता। कहो न इसमे कोई बुराई है ? ले लेने मे और भी एक लुटेरे और हत्यारे से ! [माहिरअली

उनकी ओर विस्मय से देखता है] जाओ हरनन्दन को धीरे से बुला तो लाओ। शायद झूठ ! हाँ जाओ लिवा लाओ हरनन्दन को अकेले। समझते हो न ?

माहिरअली—मैं तो ऐसा नहीं कर सकता। उस बच्चे की हालत . अभी तक बेहोश है।

मुरारीलाल—इसका रुपया निकल जाना रजनीकान्त के लिये भी अच्छा होगा। [कुछ सोचकर] अच्छा अपने लिये नहीं... तुम्हारी ही बात सही . रजनीकान्त के लिये यह रुपया उससे ले लिया जाय। मरने की कोई सम्भावना है नहीं उसके ..यह सारा रुपया उसे दिया जायगा।

माहिरअली—मैं जाता हूँ लेकिन मेरी राय में.. मुमकिन है वह मर जाय।

मुरारीलाल—मरना होता तो ..कल शाम की चोट से अब तक मर गया होता मैं समझता हूँ इससे बढ़ कर उस बेईमान को कोई दूसरी सजा दी नहीं जा सकती। तुम क्यों नहीं समझते ? इसी रुपये के बल पर वह आनरेरी मैजिस्ट्रेट हुआ—राय साहब हुआ...उसका जहर इसी तरह निकलेगा। मैंने सोच लिया, इसमें कोई बुराई नहीं है तुम जाओ।

माहिरअली—मैं जाऊँगा . लेकिन इसका नतीजा

मुरारीलाल—उसकी जान का खतरा तो नहीं है न ?

माहिरअली—वह चारों ओर से घेर कर मारा गया है। जान

का खतरा हो सकता है। आज अदालत में छोटा बड़ा सब किसी ने उस बेईमान को गालियाँ दीं।

मुरारीलाल—ठीक है उसको कई ओर से सजायें मिलें। जाओ खड़े क्यों हो ?

[माहिरअली का प्रस्थान । मुरारीलाल भीतर जाता है]

तीसरा अंक

[रात। यों तो रात अँधेरी है ही आकाश में बादल होने के कारण भयंकर हो उठी है। बँगले के बरामदे में उसी तरह कुर्सियाँ पड़ी हैं। बाईं ओर की कोठरी के दरवाजे के पास बरामदे में फर्श पर एक लालटेन जल रही है। बड़े कमरे के किवाड़ उसी तरह खुले हैं, कमरे के एक भाग में बाहर की लालटेन का प्रकाश पहुँच रहा है, शेष कमरा अँधेरा है। माहिर-अली चुपचाप बरामदे में आगे की ओर बैठा है। साँस भी ले रहा है या नहीं पता नहीं चलता। भीतर की ओर से मनोरमा का प्रवेश। मनोरमा लालटेन के प्रकाश में आकर खड़ी होती है। क्षण भर के बाद बरामदे में निकल कर बाहर की ओर देखने लगती है]

मनोरमा—ओह! कितना अँधेरा है. आज की रात तो जैसे . माहिर! माहिर! अरे सो गये क्या ?

माहिरअली—नहीं ..सो..नहीं रहा हूँ ..

मनोरमा—क्या कर रहे हो इस तरह बुलाने पर भी नहीं बोलते ?

माहिरअली—आज की रात परलय है .किसी को बोलना नहीं चाहिए। यहीं बैठे बैठे झपकी आ गई ..बड़ा डरावना सपना देखा है ..अभी अभी...दो काले आदमी [ज़ोर से साँस लेकर] शैतान की तरह ख़ौफनाक [खम्भे की ओर हाथ उठाकर] इससे भी ऊँचे थे हाँ इससे भी ऊँचे .काले, लम्बे लम्बे दाँत ओठ के बाहर हो गये थे, बड़े बड़े बाल [डर कर चारों ओर देखता

ई, हाथ उठाकर ऊपर से नीचे को धीरे धीरे खींचता है, यहीं मेरे सामने उतर पड़े] मेरा हाथ पकड़कर [दायाँ हाथ आगे की ओर बढा देता है] खींचने लगे.. मैं घबड़ा कर जाग पड़ा। मालूम हो रहा है जैसे इधर चारों ओर भूत घूम रहे हैं।

मनोरमा—हूँ

माहिरअली—शायद उसे ले जाने के लिए दूत आ गये हैं चला भी गया होगा।

मनोरमा—क्या कह रहे हो ?

माहिरअली—उसकी बोली बन्द हो गई है। उस घर का चिराग आज बुझ रहा है . आज ही तक उसका दुनिया का नाता था।

[मनोरमा एकाएक नीचे उतर कर बाहर की ओर निकल जाती है]

हाँ हाँ क्या कर रही हैं ? उधर नहीं उधर नहीं इस अँधेरी मे। डर जायेंगी डर जायगी कहा मानिये . डर जायेगी। आप लोग तो कुछ मानती ही नही। उसे ले जाने के लिये दूत इधर से ही गये हैं . इधर से ही ..लौटते वक्त झटके में पड़ जाना बुरा होता है ऐसे मौके पर .

मनोरमा—मेरे लिये कौन रोने वाला है माहिर . !

माहिरअली—[उठकर उसकी ओर बढते हुये] कहाँ गई किधर गई. .आइये . बोलती क्यों नहीं ?

मनोरमा—कहो न ! यहीं हूँ।

माहिरअली—आप डरती नही हैं ?

मनोरमा—नहीं किस लिए डरूँ ? मैं भला मुझे जिन्दगी लेकर क्या करना है ?

माहिरअली—वह देखिये आसमान की ओर लूक फूटा है ओह ! कितना बड़ा ..कितना बड़ा...सारा आसमान उजेला हो गया। मालूम हो रहा है मर गया। लौट चलिये . लौट चलिये .. आह ! आह !

मनोरमा—क्यों शोर कर रहे हो जी ?

माहिरअली—उन सब के लौटते वक्त आप रास्ते में पड़ जायेंगी।

मनोरमा—अच्छा तो अगर मेरी उन सब से भेंट हो जायेगी तो मैं उसे जाने न दूँगी पकड़कर रख लूँगी।

माहिरअली— किसे ?

मनोरमा—उसी रजनीकांत को ..

माहिरअली—उसको ? किस तरह ? मर जाने वाले को कभी किसी ने पकड़कर रखा है ?

मनोरमा—देखो तग न करो। जाओ मुझे यहीं खुले आकाश के नीचे रहने दो। मुझे कुछ नहीं होगा तुम न डरो।

माहिरअली—अच्छा आप यहीं रहिये तो मैं जाकर बैठूँ . आगे न बढ़ियेगा आगे बढ़ने में...

[माहिरअली लौट कर बरामदे में खम्भे के पास बैठता है। बाहर की ओर से मनोजशंकर और चंद्रकला का प्रवेश। चंद्रकला आगे बढ़ कर कुर्सी पर बैठ जाती है। मनोजशंकर खड़ा होकर माहिरअली की ओर देखने

लगता है। आगे बढकर लालटेन उठाता है और उसे माहिरअली के मुँह के सामने कर देता है।]

मनोजशकर—अरे ! तुम रो क्यों रहे हो ?

माहिरअली—[घुटनों में अपना मुँह छिपा लेता है] रोशनी नहीं न हीं

मनोजशकर—[लालटेन अलग रखते हुए] लेकिन तुम रो क्यो रहे हो ?

माहिरअली—दुनिया किस्मत को रोती है . मैं भी रो रहा हूँ।

चन्द्रकला—सीधे क्यों नहीं कहते . क्या बात है ?

माहिरअली—[चन्द्रकला की ओर देखते हुए] इधर रायसाहब भगवन्तसिंह ने चालीस हजार दिया है साहब को, उधर अस्पताल से खबर आई है कि उसकी हालत खराब हो गई। मौत के वक्त का बयान लेने फौरन आइये। किसी तरह नोटों का पुलिन्दा [गोल कमरे की ओर हाथ उठाकर] भीतर फेंककर चले गये हैं। सीधा टेढ़ा यही है और इसी पर मैं रो रहा हूँ।

[चद्रकला घबड़ा कर उठती है। तेजी से साँस लेकर कई वार सिर हिलाती है—फिर वहीं एकाएक बैठकर ऊपर छत की ओर देखने लगती है।]

मनोजशङ्कर—[सन्न होकर धरती की ओर देखते हुये] हूँ चालीस और दस पचास हजार उसकी मृत्यु का मुआवजा तो ले

लिया गया...अब कानून और व्यवस्था का अभिनय होगा। माहिर !

माहिरअली—जी

मनोजशंकर—तुम कब से इनकी नौकरी में हो ?

माहिरअली—पन्द्रह साल होगये। मथुरा से मुरादाबाद गये, फैजाबाद गये, गाजीपूर गये और इधर यहाँ हैं आप तो जानते ही हैं।

मनोजशंकर—हूँ . तुम्हारी तबीअत इस नौकरी से कभी .

माहिरअली—अब तक ? मैं कभी चला गया होता। लेकिन मैं जा नहीं सकता। मैंने. मैं अपना हाथ जो कटा चुका हूँ उसी डर से . उसी डर से अब तक .

मनोजशंकर—कैसा हाथ कटा चुके हो ?

माहिरअली—लेकिन कह देने पर तो फाँसी पड़ जाऊँगा।

मनोजशंकर—फाँसी पड़ जाओगे ?

माहिरअली—जी हाँ . साहब तो यही कहते हैं और इसीलिये [मनोजशंकर की ओर देखकर] दस वर्ष बीत गया अभी किसी को पता नहीं चला कि मैंने

मनोजशंकर—कहो यहाँ कोई नहीं है ?

माहिरअली—आप हैं न ? आपही से तो [सहमकर सहसा चुप हो जाता है]

मनोजशंकर—माहिर ! तुमने तो मुझे सन्देह में...आज सबेरे जो तुमने कहा था उसमें कुछ और...

माहिरअली—नहीं . नहीं . कोई शुबहा नहीं ..मैंने कभी ..

मनोजशकर—लेकिन तुम इस तरह काँप क्यो रहे हो ?

माहिरअली—[कातर स्वर में] लेकिन कह देने पर मेरी जान नहीं वच सकती। मैं फॉसी पड़ूँगा।

चन्द्रकला—ओह! इस समय आप लोग चुप रहें। सब किसी की जान आज ही क्यों जाय ? जिसे मरना था वह तो मरा ही।

मनोजशकर—चन्द्रकला! शान्त रहो। सारा संसार मरता है। एक ओर मृत्यु हो रही है दूसरी ओर जन्म हो रहा है। यह कोई नई बात नहीं है। माहिरअली क्या कह रहा है ? जीवन का रहस्य उसमे है उसे सुनो।

[चन्द्रकला उद्विग्न होकर उठती है और भीतर चली जाती है] कहाँ जा रही हो ? सुनो।

चन्द्रकला—नहीं मैं जा रही हूँ अब सो रहूँ।

मनोजशकर—ऐं तुम्हे नींद आयेगी ?

चन्द्रकला—यह न पूछो! नींद ऐसी आये जो कभी टूटे न। [वेग से प्रस्थान]

मनोजशकर—माहिर! कह दो मैं किसी से नहीं कहूँगा।

माहिरअली—आपसे ? [घवड़ाकर उसकी ओर देखता है]

मनोजशकर—तुम मेरा विश्वास नहीं करते ?

माहिरअली—इस वारे मे...इस वारे में .

मनोजशकर—तुम इतने घबड़ा क्यों गये हो ? और इस तरह काँप क्यों रहे हो ?

माहिरअली—यह कयामत की रात है। आज दुनिया का निशान मिट जायगा।

मनोजशकर—देखो! कयामत की रात तो रोज आती है। रजनीकान्त के लिये आज ही कयामत की रात थी। कल सम्भव है मेरे लिये हो या तुम्हारे लिये हो। लेकिन उसमे घबड़ाने की कोई बात नही।

माहिरअली—मै अस्पताल जा रहा हूँ।

मनोजशकर—क्यो ?

माहिरअली—देखने के लिए एक बार और आखिरी बार .

मनोजशकर—पता नहीं उस तरह के कितने रजनीकान्त आज मरेंगे तुम यो इस तरह .

माहिरअली—मैने एक सपना देखा था कि मुझे पकड़ने के लिये दो दूत, दो शैतान आये थे। मेरी बाँह पकड़ने लगे. .मैं घबड़ाकर जाग गया।

[धरती की ओर देखने लगता है]

मनोजशकर—तो तुम नही कहोगे ?

माहिरअली—कह दूँगा। कह कर एक बार फाँसी पड़ जाना रोज की फाँसी से अच्छा है। लेकिन उसे देखना भी है...,चलिये आप भी अस्पताल। रास्ते मे सब कह दूँगा।

[चन्द्रकला का प्रवेश। चन्द्रकला पीले रंग की कामदार साड़ी और सोने का चन्द्रहार पहने है। मनोज उसकी ओर विस्मय से देखता है]

चन्द्रकला—इतने ध्यान से क्यों देख रहे हो ?

मनोजशंकर—चलोगी अस्पताल ?

चन्द्रकला—घंटे भर से ऊपर वहाँ रहे हैं ..अब किस लिये ?

मनोजशंकर—तब तो उसके मरने की सम्भावना न थी...

चन्द्रकला—अब मैं जाकर जिला तो न दूँगी न ? अगर वह सम्भव होता ! जाओ देख आओ।

मनोजशंकर—मालूम होता है उतना समझाना व्यर्थ गया।

चन्द्रकला—[गंभीर होकर] जाओ जाते क्यों नहीं ? समझाने का अभी बहुत समय है। मैं आज नहीं मर जाऊँगी।

[मनोजशंकर और माहिरअली का प्रस्थान। चन्द्रकला चन्द्रहार उठाकर देखने लगती है। बाहर से मनोरमा का प्रवेश।]

मनोरमा—[उसके समीप जाकर] वाह ! क्या कहना है मैं तुम्हें इसी रूप में देखना चाहती थी ? चित्र बनवाते समय तुमने यह श्रृंगार क्यों न किया ?

चन्द्रकला—तब ? [गम्भीर होकर मनोरमा का हाथ पकड़ लेती है]

मनोरमा—हाँ कहो तब ?

चन्द्रकला—तब तो मैं पार्वती की तरह मृत्युञ्जय के लिये तपस्या कर रही थी।

मनोरमा—[उसकी ओर ध्यान से देखकर] तुम्हारा चित्त शान्त है न ?

चन्द्रकला—प्रशान्त महासागर की तरह। अब लहरे न उठेगी। वह चित्र कहाँ रक्खा है ? देना तो।

मनोरमा—वह चित्र.. वह...रजनीकान्त का ?

चन्द्रकला—हाँ।

मनोरमा—शायद तुमने सुना होगा उसकी हालत...

चन्द्रकला—हाँ, सुन चुकी हूँ...उनकी तैयारी हो चुकी। अब मै भी तैयार हो जाऊँ.

मनोरमा—किस लिये ? [उसकी ओर ध्यान से देखने लगती है]

चन्द्रकला—क्यों...

मनोरमा—लेकिन तुम्हारी आँखें .

चन्द्रकला—[आँखे मल कर] मेरी आँखे; दिखाई तो पड़ रहा है मुझे...

मनोरमा—इतनी चमक क्यो रही है ?

[चन्द्रकला क्षण भर के लिये ऊपर छत की ओर देखने लगती है। उसके मुँह पर एक प्रकार का अस्वाभाविक साहस और तेज खेलने लगता है। मनोरमा उसकी ओर मन्त्र-मुग्ध की तरह देखने लगती हे।]

चन्द्रकला—[मुस्कराकर] उद्विग्न क्यों हो रही हो ?

मनोरमा—मुझे भय है कि तुम

चन्द्रकला—किस तरह का .

मनोरमा—शायद तुम अपना सर्वनाश करना चाहती हो।

चन्द्रकला—वह तो हो चुका .

मनोरमा—ओह ! तो तुम्हारा मनोज बाबू से समझौता नहीं हो सका ? तुम अब भी उसी मोह में . .

चन्द्रकला—बस . कहना मत फिर । मेरे आत्मज्ञान को तुम मोह कह रही हो ? मैं जिसकी थी हो चुकी । और समझौता कैसा ? आग और पानी का समझौता कैसा ? मनोज सब तरह से योग्य है, लेकिन उनके भीतर एक प्रकार का सन्देह, एक प्रकार का अन्धकार है जो मैं समझ नहीं सकती । वे स्वयं अपना विश्वास नहीं कर सकते । प्रयत्न उन्होंने भी किया और मैंने भी लेकिन हम दोनो असफल रहे ।

मनोरमा—हूँ लेकिन यह अंग्रेजी . विदेशी भावावेश प्रथम दर्शन का प्रेम हमारे देश में चल नहीं सकता ।

चन्द्रकला—राम और सीता का, दुष्यन्त और शकुन्तला का, नल और दमयन्ती का, अज और इन्दुमती का प्रेम प्रथम दर्शन मे ही हुआ था । स्त्री का हृदय सर्वत्र एक है क्या पूर्व क्या पश्चिम, क्या देश क्या विदेश । लेकिन मैं इस तरह अपनी सफाई न दूँगी । सम्भव है मेरा यह काम स्त्री-जीवन और समाज के विधान के नितान्त प्रतिकूल हो लेकिन अब तो मैं कर चुकी । इसका मुझे दुःख नहीं है और न तो मैं इसके लिये पश्चात्ताप करूँगी !

मनोरमा—बहन ! मैं .

चन्द्रकला—कहो मैं सुनना चाहती हूँ . जो कुछ भी कहो ..

मनोरमा—मुझे सन्देह है तुम विचार नहीं कर रही हो ?

चन्द्रकला—मनोरमा, तुम्हारा आदर्श मेरे सामने है। तुम आठ वर्ष की अवस्था में विधवा हुई थीं और मैं आज बीस वर्ष की अवस्था मे विधवा हो रही हूँ। तुम्हारा निभ गया और मेरा नहीं निभेगा ?

मनोरमा—[ओंठ पर उँगली रखकर] लेकिन मेरा विवाह भी हो चुका था।

चन्द्रकला—तो विवाह तो मेरा भी हो गया। हजार-दो-हजार आदमी भोजन न कर सके, दस बीस बार शंख न बजा, थोड़े से मन्त्र और श्लोक न पढ़े गये। यही न ?

मनोरमा—तब विवाह कैसे हुआ ?

चन्द्रकला—[मुस्कराकर] विवाह की कई प्रणालियाँ हैं। हमारे ही यहाँ पहले प्रचलित थीं अब जरूर रुक गई हैं, लेकिन . खैर मेरा तो हो गया जी। जीवन में चिन्ता करने को बहुत कुछ है एक यह भी रहेगा।

मनोरमा—बहन सावधान होने की जरूरत है

चन्द्रकला [उसे दोनो हाथों से पकड़कर] मनोरमा ! मैं तो विचार करना जानती ही न थी। तुम्ही ने तो सिखलाया और अब अधीर क्यों हो रही हो ? तुम्हारा आदर्श क्या केवल तुम्हारा रहे...मेरा भी हो। मुझे भी उसी आदर्श में जीने दो।

मनोरमा—मेरा आदर्श तो वैधव्य है जो अपने वस की बात

नहीं लेकिन तुम क्यों अपना जीवन बिगाड़ रही हो ? मैं यही तो नहीं समझ पाती।

चन्द्रकला—इधर देखो ! मजबूरी मेरे लिये भी है। तुम्हारी मजबूरी पहले सामाजिक और फिर मानसिक हुई, मेरी मजबूरी प्रारम्भ में ही मानसिक हो गई। तुम इस विचार मे पड़ गई हो कि मेरा निर्वाह कैसे होगा ? रोटी और कपड़े के प्रश्न को लेकर स्त्रीत्व की मर्यादा बिगड गई। हमारा .स्त्रियों का निर्माण भी उन्ही उपकरणों से हुआ है, जिनसे पुरुषो का हुआ है, लेकिन तब भी हम पुरुषो की गुलामी मे सदैव से चली आ रही हैं। हमारे भीतर कभी सन्देह नही पैदा हुआ ऐसा क्यों है ? पुरुष की चार हाथ की सेज में ही हमारा संसार सीमित है। पुरुष ने स्त्री की कमजोरी को उसका गुण बना दिया और वह उसी प्रशंसा में सदैव के लिये आत्म-समर्पण कर बैठी। दूसरो की रक्षा मे हम अपनी रक्षा नही कर सकीं। [चुप होकर वेग से साँस लेने लगती है। दोनों हाथों से सिर पकड़कर कुर्सी पर नीचे की ओर लटक जाती है। मनोरमा उसके पीछे जाकर उसका सिर सम्हालती है] छोड़ दो शरीर और मन की इसी कमजोरी के कारण हम संसार के उन्मुक्त वातावरण से खींच कर दीवालों के घेरे मे डाल दी गई।

मनोरमा—ठहर जाओ। तुम्हारी छाती बड़े जोर से धड़क रही है और साँस भी तेज होगई है। नही नहीं . अभी नहीं, ठहरो।

चन्द्रकला—[एकाएक कुर्सी से उठकर] इस दुर्बलता को आज

निकालना होगा। मेरे हृदय में वह हँसी गड़ गई है। मुझे रोना नहीं है। [अँगड़ाई लेकर बरामदे के नीचे उतर जाती है]

मनोरमा—[आगे बढ़ती हुई] कहाँ जा रही हो इस अँधेरे में ?

चन्द्रकला—सूर्य को बुलाने . दीपक से तो यह अँधेरा नहीं मिटेगा। चलोगी तुम भी चलो न चलें ?

मनोरमा—अरे ! तुम्हे उन्माद हो रहा है क्या ?

चन्द्रकला—छिः . उन्माद क्यों होगा ? मेरे भीतर आज चिरन्तन नारीत्व का उदय हुआ है। मेरी चेतना आज मेरे चारों ओर फैल रही है और तुम कहती हो मुझे उन्माद हो रहा है। मैं आज अपने पैरों पर खड़ी हो रही हूँ मुझे किसी दूसरे पुरुष की सहायता की जरूरत नहीं है। रोटी और वस्त्र मेरी शिक्षा इतनी हो चुकी है कि मैं अपना प्रबन्ध कर लूँगी। कोई चिन्ता नहीं है। मेरा वैधव्य अमर रहे।

मनोरमा—[कातर होकर] हाथ जोड़ती हूँ यहाँ आओ। नहीं तो मैं रोने लगूँगी।

चन्द्रकला—तुम रोने लगोगी.. किस लिये ? तुम्हे भी कुछ चाहिये क्या ? बाबू जी के पचास हजार में से कुछ चाहिये तो आने दो

[आगे बढ़कर बरामदे में जाती हुई] इच्छा थी इस अन्धकार में अपने अभिसार को चल दूँ . लेकिन नहीं मैं तुम्हारे पास रहूँगी...तुम न रोओ...हम लोग अगर अपना रोना बन्द कर सकें तो फिर हमारी मुक्ति हो जाय। मनोज मेरी ओर इस

तरह देख रहे थे मानो चोर की ओर देख रहे हों। लेकिन मैं नहीं देखती मैंने चोरी कब की ?

[कुर्सी पर बैठकर सिर के ऊपर से साड़ी हटा देती है]

ओह! बड़ी गर्मी है। पानी भी नहीं बरसता।

मनोरमा—[उसकी ओर ध्यान से देखती हुई] अरे!

चन्द्रकला—[धीमे स्वर में] क्या है ?

मनोरमा—तुम्हारे सिर पर सिन्दूर कैसा ?

चन्द्रकला—मेरा विवाह जो हुआ है

मनोरमा—कहाँ . ?

चन्द्रकला—अस्पताल मे

मनोरमा—अस्पताल में ? अरे!

चन्द्रकला—क्या 'अरे' 'अरे' कर रही हो इसमे विस्मय क्या है ? मेरा प्रेमी वहाँ था . तुम जानती हो। यह मेरी सुहागरात है . कितनी सूनी ..लेकिन कितनी व्यापक। इसका अंत नहीं है। मेरा पुरुष मुझे अपनी गुलामी में न रख सका . मुझे सदैव के लिये स्वतंत्र कर गया। मुझे जो अवसर कभी न मिलता वह मिल गया। [मुस्कराकर] इस तरह विस्मय मे क्यों देख रही हो ?

मनोरमा—मुझे तो काठ मार गया।

चन्द्रकला—लेकिन क्यों ? मेरा सिन्दूर देखकर ? उन्हीं के हाथ से लगा है [सिर पर दोनो हाथ रखकर धरती की ओर देखने लगती है]

मनोरमा—वे तो बराबर बेहोश रहे हैं।

चन्द्रकला—हाँ ..

मनोरमा—तब ..

चन्द्रकला—अगर वे बेहोश न होते तब तो शायद यह सम्भव न होता।

मनोरमा—लेकिन यह हुआ भी कैसे ? यह भी तो...

चन्द्रकला—[गम्भीर होकर धीमे स्वर में] मैं अपने साथ सिन्दूर लेती गई थी। सरकारी अस्पताल की हालत तो तुम जानती हो जैसा प्रबन्ध रहता है ..रोशनी का और और चीजो का। पास में एक लालटेन रक्खी थी, कोई कम्पाउण्डर उठा ले गया मुझे मौका मिल गया; उनके हाथ पर सिन्दूर रख कर मैंने लगा लिया। देखती नहीं हो कैसी सिन्दूर की होली खेली गई है ?

मनोरमा—ओह...

चन्द्रकला—क्यो व्यर्थ की चिन्ता कर रही हो।

मनोरमा—तुम्हारी भावुकता ..

चन्द्रकला—जैसे मैंने कोई विचारहीन काम किया है। [कई बार सिर हिलाती है]

मनोरमा—मैं तो

चन्द्रकला—व्यर्थ की बहस न करो बहन .

मनोरमा—लेकिन

चन्द्रकला—[क्षुब्ध होकर] फिर लेकिन तुम्हारा लेकिन मेरा

विश्वास नहीं डिगा सकता और यदि तुम न मानोगी तो मुझे कहना पड़ेगा कि तुम्हारा विधवापन निरर्थक है लेकिन मेरा सार्थक

मनोरमा—हाय बहन ! क्यों मुझे अपमानित कर रही हो ?

चन्द्रकला—ईश्वर जानता है मैं सच्चे मन और सच्ची आत्मा से कह रही हूँ।

मनोरमा—सच्चे मन और सच्ची आत्मा से ?

चन्द्रकला—हाँ

मनोरमा—तुम क्षोभ में . यह

चन्द्रकला—मै बिलकुल शान्त और प्रसन्न चित्त से

मनोरमा—ऊँह जाने दो

चन्द्रकला—तुम्हारे मन मे मेरे प्रति संदेह रह जायगा। सुनो मै क्या समझती हूँ ? नहीं तो तुम ..

मनोरमा—तुम्हारा चित्त स्थिर नही है इस समय चुप रहो।

चन्द्रकला—चुप तो मुझे रहना है ही। भविष्य मे मैं इस विषय पर व्याख्यान न दूँगी। यह रस मेरी आत्मा मे भर गया है यही मेरा संतोष है। पुरुष बली है—सब तरह से बली रहेगा मै द्वन्द मे विश्वास नही करती। स्त्री ने स्वय अपना नरक बनाया है पुरुष उसके लिए दोषी नहीं है . हमने कभी अपनी आत्मा की पुकार नही सुनी [कुछ सोचकर] बहन ! तुम्हारा विधवापन तो रूढ़ियों का विधवापन है, वेद मन्त्रो का

और ब्रह्मभोज का जिस पुरुष को तुमने देखा नही ..जिसकी कोई धारणा तुम्हे नहीं है, जिसकी कोई स्मृति तुम्हारी आत्मा को हिला नहीं सकी...उसका वैधव्य कैसा है ? तुम स्वयं सोच लो। मेरा वैधव्य वह निर्विकार मुस्कराहट, यौवन और पुरुषत्व के विकास की वह स्वर्गीय आशा मैं कल्पना करती हूँ पच्चीस वर्ष की अवस्था में वह शरीर और वह हृदय कैसा होता [कुछ सोचकर] इसीलिये कहती हूँ मेरा वैधव्य सार्थक है।

[मनोरमा उद्विग्न हो उठती है। उसके मुँह पर विषाद और विस्मय के दृश्य आने लगते हैं। कभी तो धरती की ओर और कभी छत की ओर देखने लगती है। आँखें दीवाल की ओर गड़ाकर कई बार सिर हिलाती है। चंद्रकला की ओर तीखी आँखों से देखती हुई एकाएक बाहर निकल जाती है। चंद्रकला उठती है। साड़ी का आँचल कई बार हिलाती है— गर्दन टेढी कर कई बार इधर उधर देखती है। बरामदे में आगे बढकर बाहर की ओर देखती है और एक साँस लेकर भीतर चली जाती है। थोड़ी देर तक सन्नाटा रहता है। दायें हाथ में शीशा लेकर चद्रकला का प्रवेश। चद्रकला आगे बढकर बायें हाथ से लालटेन उठाकर अपने मुँह के सीध में कर लेती है और शीशे मे अपना मुँह देखने लगती है। मनोरमा का प्रवेश]

[गभीर मुद्रा मे] आज तुम भावना और विक्षोभ की आँधी मे उड़ रही हो। इस समय मेरे शब्द हल्के पड़ेंगे...नहीं तो मैं कह देती कि इस समय तुम्हारा यह शीशा देखना जिस चीज को तुम आत्मज्ञान और चिरंतन नारीत्व का उदय कह रही हो वह नहीं है। तुम्हारा वैधव्य तो अमर रहे और तुम अपने ही रूप पर रीझती भी रहो यह क्या है ?

चन्द्रकला—[उसपर लालटेन का प्रकाश डालती हुई] क्यों

मनोरमा—तुम्हारा वैधव्य तुम्हारा है वह तुम्हारा स्वर्ग हो सकता है, लेकिन उसमें समाज को संसार की क्या आशा है ? वेदमंत्र, हवन, शंखध्वनि, जिनके साथ तुम्हारा समझौता नहीं हो सकता सामाजिक संस्कारों के लिये मुहर का काम करते हैं। विवाह हो गया इसकी सूचना और साक्षी का काम करते हैं। तुम अभी जो मुझ पर और सामाजिक रूढ़ियों पर विष उगलती रही हो उसके मूल मे तुम्हारा विक्षोभ और तुम्हारी नई शिक्षा है, तुम उन पर रीझ गई और आज मरने पर तुम विधवा हो गई, मैं विधवा हुई थी एक बार मेरे किसी दूसरे वैधव्य की सम्भावना नहीं हो सकती, क्योंकि अब फिर कभी मेरे विवाह के नाम पर वेदमन्त्र, शंखध्वनि, ब्रह्मभोज का अवसर नहीं आयेगा, लेकिन तुम जो उनके मोह में पड़ गई केवल एक बार देख कर . तुम क्या समझती हो ? वैसी हँसी, मुस्कराहट, शरीर की सुन्दरता और उसका विकास, आँखों की बिजली और बालो का उन्माद उस कोटि का [चारों ओर हाथ उठाकर] इतने बड़े संसार में दूसरा न होगा ? और तुम्हारी दानशील प्रवृत्ति वहाँ भी न उलझ जायगी ? मेरे साथ वेदमन्त्रों और शंखध्वनि का सवाल था, इसलिये मैं एक बार विधवा हुई, लेकिन तुम्हारे साथ तो अनेक बार विधवा होने की सम्भावना है। भावुकता और विक्षोभ के अवसर पर निकले हुये शब्द संस्कारों की मर्यादा इस तरह नहीं मिटा सकते और इसलिये कि आदर्श उनका आधार नहीं होता

परीक्षा की आँच मे ठहर भी नही सकते। अभी तक कुशल है। अराजकता . सम्भव है कुछ समय के लिये व्यवस्था मिटादे . लेकिन स्वतः व्यवस्था नही हो सकती। स्वतन्त्र स्त्रीत्व, आज दिन के नये विचार, जो संसार को एकदम स्वर्ग बना देना चाहते हैं, उनमे से एक है, लेकिन इस नये स्वर्ग की कल्पना के मूल मे कोई आदर्श नहीं है, हाँ प्रवृतियो की घुड़दौड़ के लिये यह काफी मैदान दे सकेगा।

चन्द्रकला—बस रहने भी दो...

मनोरमा—क्यो सुन लो...तबियत नही चाहती ?

चन्द्रकला—[उसकी ओर देखती हुई] यह न समझना कि मैं केवल शीशे में अपना सिन्दूर और सौन्दर्य देखती रही हूँ।

मनोरमा—अच्छा...

चद्रकला—मेरा व्यक्तित्व, मेरी अपनी इच्छा और प्रवृत्ति

मनोरमा—क्या मतलब ?

चन्द्रकला—शास्त्र और संस्कार मेरा मत है मेरी आत्मा को जो स्वीकार . बस और कुछ नही

मनोरमा—हूँ...लेकिन आत्मा . आत्मा [कुछ सोचकर] हाँ जी आत्मा अंग्रेजी अर्थ मे या संस्कृत ..

चन्द्रकला—क्यों ? [उसकी ओर देखने लगती है]

मनोरमा—[हाथ हिलाकर] मैं पूछती हूँ, आत्मा तुम किस अर्थ मे कह रही हो अंग्रेजी मतलब में या जो मतलब अपने यहाँ माना जाता है।

चन्द्रकला—मैं तो . [चुप हो जाती है]

मनोरमा—अंग्रेजी में आत्मा की भावना अनादि की नहीं है . उनके लिये तो पचास साठ वर्ष के जीवन में ही आत्मा कभी कभी दस पाँच बार मरकर जी उठती है या वे बुद्धिबल से आत्मा को जब तबियत चाहती है बदल दिया करते हैं लेकिन हमारे यहाँ आत्मा के साथ इस प्रकार का खिलवाड़ नहीं होता . हमारे यहाँ तो आत्मा अनादि और अनन्त है आज कल के जिन लोगों को अंग्रेजी की ऊँची शिक्षा मिल गई है . हमारे यहाँ वे भी आत्मा को खिलौना बना रहे हैं वे भी कहने लगे हैं अपनी पुरानी आत्मा को मार डालो बदल डालो नहीं तो कल्याण नहीं। तुम भी शायद उसी तरह

चन्द्रकला—[घबड़ाकर] चुप भी रहो

मनोरमा—आ गया समझ मे .

चन्द्रकला—मैं समझना नहीं चाहती . नहीं नहीं मुझे न समझावो। मैं समझूँगी नहीं।

मनोरमा—लेकिन यह तो...

चन्द्रकला—[कड़े शब्दों मे] मैंने कह दिया चुप रहो

मनोरमा—हूँ ..

चन्द्रकला—[उसकी ओर देखकर सिर हिलाती है] अब जब कभी भाग्य से फिर भेंट होगी तो समझा जायेगा। भगवन्त के पचास हजार के लिये प्रायश्चित्त कौन करेगा ? साथ ही साथ वह भी हो जायगा। [कुर्सी में गिरकर चुप हो जाती है। मनोरमा

उसके पास जाकर खड़ी होती है। बाहर मोटर आने की आवाज होती है। चन्द्रकला चौंककर उठती है और अपने सिर को साड़ी से अच्छी तरह ढँक लेती है। मनोरमा हटकर भीतरी कमरे में चली जाती है। मुरारी-लाल का प्रवेश। मुरारीलाल का चेहरा उतरा हुआ और आँखें कठोर हो रही हैं]

मुरारीलाल—[चारो ओर घूमकर देखते हुए] चन्द्रकला !

[चन्द्रकला धरती की ओर देख रही है। मुरारीलाल कुर्सी आगे की ओर खींचकर बैठते हैं और उसकी ओर आँखें गढ़ाकर देखने लगते हैं] नहीं सुनाई पड़ता ?

चन्द्रकला—[उसी तरह धरती की ओर देखती हुई] जी .

मुरारीलाल—शाम को गई थी अस्पताल में ? [जोर से] बोलती क्यों नहीं ?

चन्द्रकला—[धीमे स्वर में] जी .

मुरारीलाल—[क्रोध में] बस एक शब्द 'जी'। मेरे सामने लाज आ रही है और भरे अस्पताल में उसके सिर पर हाथ रखने में, उसके तलवों को सहलाने में लाज नहीं आई थी ? दुनिया जान गई कि मेरी लड़की अस्पताल में एक मारे हुये लड़के की सहानुभूति में वहाँ तक खिच गई थी मैं कल किस मुँह से कचहरी जाऊँगा ? मुमकिन है कलक्टर सुनें तो समझें कि मैं . [रुककर उसकी ओर देखने लगता है। चन्द्रकला वहाँ से जाना चाहती है] कहाँ चली ? ठहर जा। मैं हर्गिज ऐसी बातें बर्दाश्त

नहीं कर सकता। अपनी मर्यादा इस तरह मिट्टी मे नहीं मिलने दूँगा। अस्पताल क्यो गई थी ? किसकी आज्ञा से ?

चन्द्रकला—घूमने गई थी

मुरारीलाल—[घूरकर] सारा दिन स्वाँग किये रही और शाम को घूमने गई अस्पताल में ? [चन्द्रकला तेजी से भीतर निकल जाती है] सुन सुन नही सुनाई पड़ता ? अच्छा [उठकर भीतर जाना चाहते हैं बड़े कमरे में प्रवेश करते हैं।]

मनोरमा—[कमरे के भीतर से] कहाँ इस तरह दौड़े जा रहे हैं ?

मुरारीलाल—उससे पूछने कि

मनोरमा—शान्त हूजिए क्रोध को शान्त कीजिये सब नही तो कोई और अनर्थ निश्चित है।

मुरारीलाल—कोई और अनर्थ ? तुम अँधेरे मे क्यो खडी हो ?

मनोरमा—चलें बाहर मै कहती हूँ सुन लें तब क्रोध की उत्तेजना में वहाँ जाना ठीक नहीं।

मुरारीलाल—अच्छा चलो। सिर में बड़ा दर्द है और शायद ज्वर भी होगया है।

मनोरमा—आपको ?

मुरारीलाल—हाँ

मनोरमा—आज का सारा दिन और रात को भी दस बज रहे हैं इसी तरह झंझट और उत्तेजना में .

मुरारीलाल—[बरामदे में कुर्सी पर बैठते हुए] हाँ कहो

मनोरमा—[बरामदे मे आगे की ओर खडी होकर] उनका चित्त स्थिर नही है। मुझे तो सन्देह है अगर वे उत्तेजित की जायेगी तो बड़ा अनर्थ होगा।

मुरारीलाल—छिः .अनर्थ होगा। मै इतना कच्चा नही हूँ और अगर अनर्थ भी होगा तो क्या ? जैसे और सब सह रहा हूँ उतना और

मनोरमा—उनके मस्तिष्क मे विक्षोभ हो गया है वे पागल न हो जायँ।

मुरारीलाल—पागल हो जाना इतना आसान नही है। नहीं तो मैं कभी का ही पागल हो गया होता। उसके लिये जितना दु:ख मुझे है . अभी बयान लेते वक्त

मनोरमा—[उत्सुक होकर] क्या हुआ है अभी या

मुरारीलाल—नही। प्राय: एक घंटा हो रहा है मरे मुझे उसका कितना दु:ख है ईश्वर जानता है। और यह लड़की [क्रोध मे ऊँची साँस लेने लगते हैं]

मनोरमा—यह दु:ख की रात है ही। सब किसी को दु:ख है। आज क्रोध न कीजिये। आज तो रात बीतना ही नही चाहती। बयान क्या रहा ?

मुरारीलाल—दिन भर बेहोश रहा...उसे होश भी हुआ तो थोड़ी देर के लिये रात को...नहीं तो बयान उसी समय ले लिया गया होता।

मनोरमा—बयान है क्या ?

मुरारीलाल—उसने किसी मारनेवाले का नाम नहीं बतलाया है।

मनोरमा—क्यों ?

मुरारीलाल—न मालूम। मैं तो हैरान हो गया। जीता रहता तो बड़ा आदमी होता, इसमें सन्देह नहीं [जेब से एक कागज निकालकर] "मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि मैं रजनीकान्त वल्द रमापति सिंह . . . का रहने वाला हूँ। ता० पाँच सितम्बर दिन रविवार को दो घंटा दिन रहते मैं अपना धान जो कि बाग नम्बर १३१ के पच्छिम आराजी नं० १३३ में रोपा गया है देखने गया। एक भद्र व्यक्ति जो वकालत करते हैं मुझसे बातें करने लगे इतने ही में पीछे से एक साथ मुझपर चार लाठियाँ पड़ीं। मैं घबड़ाकर घूम पड़ा। जो महोदय मुझे बातों में फँसाए हुए थे उछल कर कई कदम पीछे हट गये और बोल उठे 'मार डालो अब क्या देखते हो।' मैंने देखा आठ आदमी लाठियों के साथ खड़े हैं, एक ही साथ आठ लाठियाँ ऊपर उठीं और मुझ पर गिरीं। मैं वहीं गिर पड़ा। गिरने पर मुझे कितनी लाठियाँ लगीं कह नहीं सकता।"

प्रश्न—तुमने किसी को पहचाना ?

उत्तर—सब को

प्रश्न—नाम बतलाओ..

उत्तर—नाम बतलाना मैं नहीं चाहता। मेरे परिवार में केवल दो स्त्रियाँ हैं कोई बच्चा भी नहीं है। मेरे परिवार की सारी

आशायें मेरे साथ जा रही हैं। मैं नहीं चाहता कि दूसरो की आशाएँ भी अपने साथ लेता जाऊँ।

[मनोरमा की ओर देखते हुए] इसके बाद ही मैंने उसके मुँह की ओर देखा ..उसकी आँखे बन्द हो गईं और मुँह पर मुस्कराहट आ गई। डाक्टर ने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ा और कह दिया नाड़ी बन्द हो गई। [कुर्सी की बॉह पर झुक जाता है]

[मनोज और माहिरअली का प्रवेश। माहिर बरामदे के नीचे खड़ा है। मनोज आगे बढ़कर मुरारीलाल की कुर्सी के सामने खड़ा होता है]

मनोजशंकर—तो उन्होंने आत्महत्या नही की . . . आपने उन्हे मरवा डाला ?

मुरारीलाल—[चौंककर कुर्सी से उठते हुए] ऐं ! [सन्न होकर मनोज की ओर देखने लगता है] मैंने ? कौन कहता है ?

मनोजशंकर—आपने ! आपने उन्हे मरवा डाला। सबूत चाहिये तो माहिर खड़ा है खून करने में उसने भी आपकी मदद की थी।

मुरारीलाल—[साहस के साथ] माहिर...तुमने ..

माहिरअली—रजनीकान्त के खून से, वह सूखा हुआ पेड़, उस खून का सूखा हुआ पेड़ हरा हो गया।

मनोजशंकर—याद कीजिये.. वह रात . दस वर्ष बीत गया आपने अपने मित्र को भॉग पिलाकर नाव से नदी मे ठेल दिया था। केवल आठ हजार रुपया पचा लेने के लिये। आप उस समय भी डिप्टी-कलक्टर थे और माहिर आपका तब भी मुंशी

था। उसी रुपये से आपने यह मोटर ली थी और गाँव पर एक बँगला बनवाया था।

[मुरारीलाल कुर्सी पर गिर पड़ते हैं। मनोरमा वहीं बैठ जाती है। मनोजशंकर आगे बढ़कर मुरारीलाल का दायाँ हाथ जो कुर्सी से नीचे की ओर लटक गया है उसे सम्हालकर कुर्सी पर रखता है।]

मुरारीलाल—मनोज! [धीमे स्वर में और हाँफते हुए] मैं बराबर प्रायश्चित्त करता रहा हूँ। तुम्हें मैंने अपनी सारी चिंताओं का तुम जानते हो मेरा व्यवहार जैसा तुम्हारे साथ...मेरी इच्छा थी कि चन्द्रकला से तुम्हारी ..मैं सब ओर से अभागा था।

मनोजशंकर—आपने स्वीकार कर लिया। मेरी आत्मा का बोझ उतर गया। अब मैं आत्मघाती पिता का पुत्र नहीं हूँ। [उत्साह से] ओह! मैं क्या था? इसी चिंता में मेरा स्वास्थ्य बिगड़ गया, मानसिक बीमारी हो गई। बराबर रात को मैं उन्हें स्वप्न में देखता था और सारा दिन उसी स्वप्न की भावना में पड़ा रहता था। पढ़ाई में भी कभी मेरी तबियत नहीं लगी किसी तरह विषय तैयार कर परीक्षा पास करता गया। यही बात अगर पहले मालूम होती आज से पाँच सात वर्ष पहले तो मेरा जीवन इतना नीरस न होता।

मुरारीलाल—मनोज! मैं अपना सब कुछ तुम्हें दे रहा हूँ मुझे क्षमा कर दो। एक लड़की थी वह भी नहीं सम्हल सकी।

मनोजशंकर—[प्रसन्न होकर] नहीं...नहीं...अब मुझे प्रसन्न चित्त और नीरोग आत्मा के साथ संसार में जाने दीजिये। मैं

अपने लिये स्थान खोज लूँगा। आप से कुछ लेना आपकी प्रत्येक वस्तु मे, आपकी किसी भी स्मृति मे उस खून के धब्बे लगे हैं।

मुरारीलाल—[उठकर] नहीं जी कोई भी बुराई प्रायश्चित्त से मिट जाती है। मेरा प्रायश्चित्त पूरा हो गया। संसार में स्थान खोजने न निकलो। इसी स्थान को भर दो। चन्द्रकला का विवाह तुम्हारे साथ हो जाय...बाँसुरी बजाते हुये सुख से रहोगे। तुम्हें किसी तरह का अभाव नहीं रहेगा मेरे पास इतनी सम्पत्ति है कि ..

[मनोजशकर विचार मे पड जाता है। चंद्रकला का प्रवेश। चन्द्रकला वही कामदार साड़ी और चद्रहार पहने है। इस समय उसका सिर खुला है साड़ी से केवल पीछे की ओर जूड़ा ढँका है। मनोजशंकर उसकी ओर देखकर जैसे काँप जाता है, उसके सिर को आगे बढकर देखता है फिर पीछे हटकर दीवाल के सहारे खड़ा होता है। मुरारीलाल उसको देखकर पहले तो क्रोध में लाल हो उठते हैं—फिर सिर थामकर कुर्सी पर बैठ जाते हैं]

मुरारीलाल—चन्द्रकला!

चन्द्रकला—जी हाँ कहिये जो कुछ मन मे आये। उस बार तो मै संकोच मे कह नहीं सकी। लेकिन अब संकोच छोड़ना होगा मुझे अपनी मर्यादा के भीतर जो कुछ चाहे मुझसे पूछ लें आज

मुरारीलाल—मेरी मर्यादा तो तुमने बिगाड़ दी और मुझे कहीं का नहीं छोड़ा।

चन्द्रकला—लेकिन मैं तो सदैव आपके लिये प्रायश्चित्त करती

रही हूँ। [मनोजशंकर की ओर हाथ उठाकर] इनके बाप की हत्या आपसे हुई और उसका बदला ये लेते रहे मुझसे बार बार मुझे ठोकर मार कर। अस्पताल मे मैं गई थी जैसा कि आप देख रहे है मेरे सिर पर . यह सिन्दूर उस पचास हजार का प्रायश्चित्त है। आपने मुझे पैदा किया था मैं विश्वास करती हूँ मेरा कोई भो काम ऐसा नहीं हुआ है . जो कि आपके लिये

[चुप होकर धरती की ओर देखने लगती है। मनोरमा वहीं खड़ी होकर खम्भे पर सिर रख देती है। मनोज कुरते के नीचे से बाँसुरी निकाल कर ओठ पर रखता है]

मुरारीलाल—[रुँधे कण्ठ से] तुम इस समय बाँसुरी बजाओगे ? इस समय ?

मनोजशंकर—बजा दूँ आप लोगों को नींद आ जाय।

मुरारीलाल—मेरा सर्वनाश हो गया और तुम व्यंग कर रहे हो ?

मनोजशंकर—प्रतिफल मिलता है न ? मेरा और रजनीकान्त का सर्वनाश भी तो

मुरारीलाल—तुम सब मिल कर उसका फल देना चाहते हो ?

मनोजशंकर—हम लोगों ने इसके लिये कोई प्रयत्न नहीं किया। सचित कर्म जो चाहते है करा डालते हैं इसमें हम किसी का दोष नहीं है।

मुरारीलाल—चन्द्रकला

चन्द्रकला—जी ..

मुरारीलाल—अब क्या होगा ?

चन्द्रकला—आपने कृपा कर मुझे शिक्षा इतनी दे दी अपना निर्वाह कर सकूँ .

मुरारीलाल—तुम यहाँ रहना भी नहीं चाहती ?

चन्द्रकला—नहीं। यहाँ रहने पर मैं आपके लिये आपकी मर्यादा के लिये कलंक रहूँगी और यहाँ से हट जाने पर और फिर पिता के घर मे रहना अब तो उचित भी नहीं .

माहिरअली—[नीचे से] मैंने सपना देखा था। मैं कहता था न कि आज कयामत की रात है।

मनोजशंकर—मनोरमा—[दोनों साथ बोल उठते हैं] हाँ